॥ गुटका ॥

OR

SELECTIONS:

BY

RÁJÁ SIVAPRASAD, C.S.I.,

श्रीमन्महाराजाधिराज पश्चिमोत्तरदेशाधिकारी श्रीयुत
लेफ़्टिनेंट गवर्नर बहादुर की आज्ञानुसार
राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ३
ने बनाया ।

PART I.

पहला खंड

ALLAHABAD:

PRINTED AT THE N. W. P. AND OUDH GOVERNMENT PRESS.

1885.
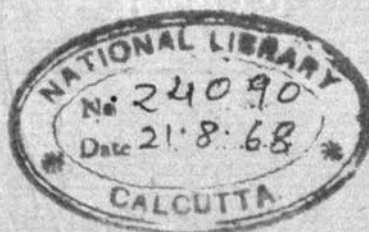
प्रेम सागर

उत्तरार्द्ध कथा

॥ ५१ अध्याय ॥

श्री शुकदेवजी बोले, कि महाराज ? जों श्रीकृष्णचंद दल समेत जरासंध को जीत, कालयवन को मार, बृज को तज, द्वारका में जाय बसे सो मैं सब कथा कहता हूं, तुम सचेत हो चित्त लगाय सुनो; कि राजा उग्रसेन तो राजनीति लिये मथुरापुरी का राज करते थे, और श्री कृष्ण बलराम सेवक की भांति उन के आज्ञाकारी; इस से राजा राज प्रजा सुखी थी, पर एक कंस की रानियां हीं अपने पति के शोक से महा दुखी थीं, न उन्हें नींद आती थी, न भूख प्यास लगतीं थी, आठ पहर उदास रहती थीं ॥

एक दिन वे दोनों बहिन अति चिन्ता कर आपस में कहने लगीं कि जैसे नृप बिन प्रजा, चंद्र बिन यामिनी शोभा नहीं पाती तैसे कंत बिन कामिनी भी शोभा नहीं पाती· अब अनाथ हो यहां रहना भला नहीं इस से अपने पिता के घर चल रहिये सो अच्छा महाराज वे दोनों रानियां ऐसे आपस में सोच बिचार कर, रथ मंगवाय, उस पर चढ़ मथुरा से चल चलीं मगध देश में अपने पिता के यहां आ ई, और जैसे श्री कृष्ण बलराम जी ने सब असुरों समेत कंस को मारा, तैसे उन दोनों ने रो रो समाचार अपने पिता से सब कह सुनाया ॥

सुनते ही जरासंध अति क्रोधकर सभा में आया, और लगा कहने कि ऐसे बली कौन यदुकुल में उपजे, जिन्होंने असुरों समेत महा बली कंस को मार मेरी बेटियों को रांड किया, मैं अभी अपना सब कटक ले धाऊं, और सब यदुवंशियों समेत मथु रापुरी को जलाय रामकृष्ण को जीता बांधलाऊं, तो मेरा नाम जरासंध, नहीं तो नहीं ॥

इतना कह उसने तुरंत ही चारों ओर के राजाओं को पत्र लिखे कि तुम अपना दल ले ले हमारे पास आओ, हम कंस का पलटा ले

यदुवंशियों को निर्वंश करेंगे· जरासंध का पत्र पातेही सब देश देश के नरेश अपना अपना दल साथ ले, झट चले आये औ यहां जरासंध ने भी अपनी सब सेना ठीक ठाक बनाय रक्खी; निदान सब असुरदल साथ ले जरासंध ने जिस समय मगध देश से मथुरापुरी को, प्रस्थान किया, तिस समय उसके संग तेईस अक्षौहिणी थीं· इक्कीस सहस्र आठसौ सत्तर रथ, और इतने ही गजपति; एक लाख नव सहस्र साढ़े तीन सौ पैदल; और पैंसठ सहस्र छःसौ दस अश्वपति; यह अक्षौहिणी का प्रमाण है ॥

ऐसी तेईस अक्षौहिणी उसके साथ थीं, और उनमें से एक एक राक्षस जैसा बली था सो मैं वर्णन कहां तक करूं· महाराज! जिस काल जरासंध सब असुर सेना साथ ले धौंसा दे चला; उस काल दशों दिशा के दिक्पाल लगे थर थर कांपने, और पृथ्वी न्यारी ही बोझ से लगी छात सी हिलने; निदान कितने एक दिनों में चला चला जा पहुंचा और उसने चारों ओर से मथुरापुरी को घेरलिया, तब नगर निवासी अति भय खाय श्रीकृष्णचंद के पास जा पुकारे, कि महाराज! जरासंध ने आय चारों ओर से नगर घेरा, अब क्या करें और किधर जांय ॥

इतनी बात के सुनते ही हरि कुछ सोच बिचार करने लगे, इस में बलरामजी ने आय प्रभु से कहा, कि महाराज! आपने भक्तों का दुःख दूर करने के हेतु अवतार लिया है, अब अग्नितन धारण कर असुर रूपी बन को जलाय भूमि का भार उतारिये यह सुन श्रीकृष्णचंद उन को साथ ले उग्रसेन के पास गये, और कहा कि महाराज! हमें तो लड़ने को आज्ञा दीजे औ आप सब यदुवंशियों को साथ ले गढ़ की रक्षा कीजे ॥

इतना कह जों मात पिता के निकट आये, तों सब नगर निवासी घिर आये; औ लगे अति व्याकुल हो कहने, कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! अब इन असुरों के हाथ से कैसे बचें; तब हरि ने मात पितृ समेत सब को भयातुर देख समझा के कहा, कि तुम किसी भांति चिन्ता मत करो, यह असुर दल जो तुम देखते हो सो पलभर में यहां का यहीं ऐसे बिलाय जायगा, कि जैसे पानी के बबूले पानी में बिलाय जाते हैं· यों कह सब को समझाय बुझाय, ढाढ़स बंधाय उन से बिदा हो, शस्त्र भरे रथों में बैठ लिये ॥

निकसे दोऊ यदुराय पहुंचे सु दल में जाय· ॥

जहां जरासंध खड़ा था, तहां जा निकले; देखते ही जरासंध श्री कृष्णचंद से अति अभिमान कर कहने लगा, अरे तू मेरे सोहीं से भागजा, मैं तुझे क्या मारूं, तू मेरी समान का नहीं जो मैं तुझ पर शस्त्र चलाऊं; भला बलराम को मैं देख लेता हूं श्रीकृष्णचंद बोले अरे मूर्ख अभिमानी तू यह क्या बकता है; जो सूरमा होते हैं सो बड़ा बोल किसी से नहीं बोलते, सब से दीनता करते हैं; काम पड़े अपना बल दिखाते हैं और जो अपने मुंह अपनी बड़ाई मारते हैं, सो क्या कुछ भले कहाते हैं· कहा कि गरजता है सो बरसता नहीं, इस से बृथा बकवाद क्या करता है ॥

इतनी बात के सुनते ही जरासंध ने जो क्रोध किया तो श्रीकृष्ण बलदेव चल खड़े हुए· इन के पीछे वह भी अपनी सब सेना ले धाया, औ उसने यों पुकार के कह सुनाया, अरे दुष्टो ! मेरे आगे से तुम कहां भाग जाओगे, बहुत दिन जीते बचे· तुमने अपने मन में क्या समझा है, अब जीते न रहने पाओगे; जहां सब असुरों समेत कंस गया है, तहां ही सब यदुवंशियों समेत तुम्हें भी भेजूंगा· महाराज ! ऐसा दुष्ट बचन उस असुर के मुख से निकलते ही, कितनी एक दूर जाय दोनों भाई फिर खड़े हुए· श्री कृष्णचंदजी ने तो सब शस्त्र लिये और बलरामजी ने हल मूसल; जो असुर दल उनके निकट गया, तो दोनों बीर ललकार के ऐसे टूटे जैसे हाथियों के यूथ पर सिंह टूटे और लगा लोहा बाजने ॥

उस काल मारू जो बाजता था, सो तो मेघ सा गाजता था; औ चारों ओर से राक्षसों का दल जो घिर आया था, सो दल बादल सा छाया था; औ शस्त्रों की झड़ी झड़ीसी लगीथी, उसके बीच श्री कृष्ण बलराम युद्ध करते ऐसे शोभायमान लगते थे, जैसे सघन घन में दामिनी सुहावनी लगती है ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले, कि पृथ्वीनाथ ! जब लड़ते लड़ते असुरों की बहुत सी सेना कटगई, तब बलदेवजी ने रथ से उतर जरासंध को बांध लिया, इस में श्रीकृष्णचंदजी ने जा बलरामजी से कहा, कि भाई ! इसे जीता छोड़दो, मारो मत; क्योंकि यह जीता जायगा तो फिर असुरों को साथ ले आवेगा, तिन्हें मार हम भूमि का भार उतारेंगे और जो जीता न छोड़ेंगे, तो जो राक्षस भाग गये हैं सो हाथ न आवेंगे· ऐसे बलदेवजी को समझाय प्रभु ने जरासंध को छुड़ाय दिया औ वह अपने बिन लोगों में गया जो रण से भाग के बचे थे ॥

चहुं दिशि चाहि कहै समुझाय सिगरी सेना गई बिलाय
भयो दुःख अति, कैसे जीजे अब घर छांडि तपस्या कीजे
मंत्री तबै कहै समुझाय तुमसो ज्ञानी क्यों पछिताय
कबहूं हार जीत पुनि होइ राज देश छांड़े नहिं कोइ

क्या हुआ जो अब की लड़ाई में हारे, फिर अपना दल जोड़ लावेंगे औ सब यदुवंशियों समेत कृष्ण बलदेव को स्वर्ग पठावेंगे, तुम किसी बात की चिन्ता मत करो महाराज ! ऐसे समझाय बुझाय जो असुर रण से भाग के बचे थे, तिन्हें और जरासंध को मंत्री ने घर ले पहुंचाया, औ यह फिर वहां कटक जोडने लगा यहां श्री कृष्ण बलराम रणभूमि में देखते क्या हैं, कि लोहू की नदी बह निकली है; तिस में रथ बिना रथी नाव से बहे जाते हैं, ठौर ठौर हाथी मरे पहाड़ से पड़े दृष्ट आते हैं, उनके घावों से रक्त झरना की भांति झरता है; गिद्ध गीदड़ काग लोथों पर बैठ बैठ मांस खाते हैं, औ आपस में लड़ते जाते हैं॥

इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी बोले, कि महाराज! जितने रथ हाथी घोडे और राक्षस उस खेत में रहे थे, तिन्हें पवन ने तो समेट इकट्ठा किया, औ अग्नि ने पलभर में सब को जलाय भस्म कर दिया, पांच तत्व पंचतत्व में मिल गये; उन्हें आते तो सब ने देखा पर जाते किसी ने न देखा कि किधर गये ऐसे असुरों को मार, भूमि का भार उतार, श्रीकृष्ण बलराम, भक्त हितकारी, उग्रसेन के पास आय दंडवत कर हाथ जोड़ बोले, कि महाराज! आप के पुण्य प्रताप से असुरदल मार भगाया, अब निर्भय राज कीजे, औ प्रजा को सुख दीजे· इतना बचन इन के मुख से निकलतें ही राजा उग्रसेन ने अति आनन्द मान बड़ी बधाई की, औ धर्मराज करने लगे· इस में कितने एक दिन पीछे फिर जरासंध उतनी ही सेना ले चढ़ आया, औ श्रीकृष्ण बलदेवजी ने पुनि त्योंहीं मार, भगाया · ऐसे तेईस तेईस अक्षौहिणी ले जरासंध सत्रह बेर चढ़ि आया और प्रभु ने मार मार हटाया॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! इस बीच नारद मुनि जी के जो कुछ जी में आई, तो ये एकाएकी उठकर कालयवन के यहां गये, उन्हें देखते ही वह सभा समेत

उठ खड़ा हुआ, औ उसने दंडवत कर, कर जोड़ पूछा कि महाराज, आप का आना यहां कैसे भया ॥

सुनि के नारद कहैं बिचारि　मथुरा में बलभद्र मुरारि
तो बिन तिन्हें हते नहिं कोई　जरासंध सों कछु नहिं होई
तू है अमर और अति बली　बालक हैं बलदेव औ हरी

यों कह फिर नारद जी बोले, कि जिसे तू मेघ बरन, कमल नैन, अति सुन्दर बदन, पीतांबर पहिरे, पीत पट ओढ़े देखे, तिसका तू पीछा बिन मारे मत छोड़ियो· इतना कह नारद मुनि तो चले गये, और कालयवन अपना दल जोड़ने लगा, इसमें कितने एक दिन बीच उसने तीन करोड़ महा मलेच्छ अति भयावने इकट्ठे किये, ऐसे कि जिनके मोटे भुज, गले, बड़े दांत, मैले भेष, भूरे केश, नैन लाल घूंगची से· तिन्हें साथ ले, डंका दे, मथुरापुरी पर चढ़ि आया, औ उसे चारों ओर से घेर लिया· उस काल श्री कृष्णचंद जी ने उसका व्यवहार देख अपने जी में बिचारा· कि अब यहां रहना भला नहीं, क्योंकि आज यह चढ़ आया है, औ कल जो जरासंध भी चढ़ि आवे तो प्रजा दुःख पावेगी इससे उत्तम यही है कि यहां न रहिये, सब समेत अनत जाय बसिये· महाराज! हरि ने बिचार कर, विश्वकर्मा को बुलाय, समझाय बुझाय के कहा कि तू अभी जाके समुद्र के बीच एक नगर बनाव, ऐसा जिस में सब यदुबंशी सुख से रहें, पर वे यह भेद न जाने कि यह हमारे घर नहीं, औ पल भर में सब को वहां ले पहुंचाव ॥

इतनी बात के सुनते ही, जा विश्वकर्मा ने समुद्र के बीच सुदर्शन के ऊपर बारह योजन का नगर जैसा श्री कृष्णजी ने कहा था तैसा ही रात भर में बनाय, उसका नाम द्वारका रख आ हरि से कहा; फिर प्रभुने उसे आज्ञा दी, कि इसी समय तू सब यदुबंशियों को वहां ऐसे पहुंचा दे, कि कोई यह भेद न जाने जो हम कहां आये औ कौन ले आया ॥

इतना बचन प्रभु के मुख से जों निकला, तों रातों रात ही उग्रसेन वसुदेव समेत विश्वकर्मा ने सब यदुबंशियों को ले पहुंचाया, औ श्री कृष्ण बलराम भी वहां पधारे· इस बीच समुद्र की लहर का शब्द सुन सब यदुबंशी चौंक पड़े औ अति अचरज कर आपस में कहने लगे, कि मथुरा में समुद्र कहां से आया, यह भेद कुछ जाना नहीं जाता ॥

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा, कि पृथ्वीनाथ! ऐसे सब यदुवंशियों को द्वारका में बसाय, श्री कृष्णचंद जी ने बलदेवजी से कहा, कि भाई! अब चल के प्रजा की रक्षा कीजे औ कालयवन का बध· इतना कह दोनों भाई वहां से चल ब्रजमंडल में आये ॥ इति ॥

॥ ५२ अध्यांय ॥

श्री शुकदेव मुनि बोले, कि महाराज! ब्रजमंडल में आते ही श्री कृष्णचंद ने बलराम जी को तो मथुरा में छोड़ा, औ आप रूप सागर, जगत उजागर, पीतांबर पहने, पीत पट ओढ़े, सब सिंगार किये, कालयवन के दल में जाय, उसके सन्मुख हो निकले· वह इन्हें देखते ही अपने मन में कहने लगा, कि हो न हो यही कृष्ण है· नारद मुनि ने जो चिन्ह बताये थे सो सब इस में पाये जाते हैं; इसी ने कंसादि असुर मारे, जरासंध की सब सेना हनी· ऐसे मन ही मन बिचार,

कालयवन यों कहे पुकारि काहे भागे जात मुरारि
आय पर्यो अब मोसों काम ठाढ़े रहो करो संग्राम
जरासंध हों नाहीं कंस यादवकुल को करों बिध्वंस

हे राजा! यों कह कालयवन अति अभिमान कर अपनी सब सेना को छोड़ अकेला श्री कृष्णचंद के पीछे धाया पर उस मूर्ख ने प्रभु का भेद न पाया· आगे आगे तो हरि भागे जाते थे, औ एक हाथ के अंतर से पीछे पीछे वह दौड़ा जाता था; निदान भागते भागते जब अनेक दूर निकल गये, तब प्रभु एक पहाड़ की गुफा में बड़ गये; वहां जा देखें तो एक पुरुष सोया पड़ा है· ये झट अपना पीतांबर उसे उढ़ाय, आप अलग एक ओर छिप रहे, पीछे से कालयवन भी दौड़ता हांफता उस अति अंधेरी कंदरा में जा पहुंचा, औ पीतांबर ओढ़े तिस पुरुष को सोता देख इसने अपने जी में जाना कि यह कृष्ण ही छल कर सो रहा है ॥

महाराज! ऐसे मन ही मन बिचार, क्रोध कर उस सोते हुए को एक लात मार, कालयवन बोला, अरे कपटी! क्या मिस कर, साधु की भांति निचिंताई से सो रहा है, उठ मैं तुझे अब ही मारता हूं· यों कह इसने

उस के ऊपर से पीतांबर झटक लिया; वह नींद से चौंकपड़ा, और जों विसने इस की ओर क्रोध कर देखा, तों यह जल बल भस्म हो गया॥

इस बीच फिर जरासंध तेईस ही अक्षौहिणी सेना ले मथुरापुरी पर चढ़ि आया, तब श्री कृष्ण बलराम अति घबराय कै निकले, और उसके सन्मुख जा दिखाई दे विसके मन का संताप मिटाने को भाग चले, तद मंत्रीने जरासंध से कहा, कि महाराज! आप के प्रताप के आगे ऐसा कौन बली है जो ठहरे, देखो वे दोनों भाई कृष्ण बलराम, छोड़ के सब धन धाम, लेके अपना प्राण, तुम्हारे त्रास के मारे नंगे पाओं भागे चले जाते हैं इतनी बात मंत्री से सुन जरासंध भी यों पुकार कर कहता हुआ सेना ले उन के पीछे दौड़ा॥

काहे, डर के भागे जात, ठाढ़े रहो करो कछु बात
परत, उठत, कंपत क्यों भारी, आई है ढिंग मीच तिहारी

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि बोले, कि पृथ्वीनाथ! जब श्री कृष्ण औ बलदेवजी ने भाग के लोक रीति दिखाई, तब जरासंध के मन से पिछला सब शोक गया, और अति प्रसन्न हुआ ऐसा जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जाता· आगे श्रीकृष्ण बलराम भागते२ एक गौतम नाम पर्वत ग्यारह योजन ऊंचा था, तिसपर चढ़ गये औ उसकी चोटी पर जाय खड़े भये॥

देख जरासंध कहे पुकारि, शिखर चढ़े बलभद्र मुरारि
अब किम हम सों जांय पलाय, या पर्वत कों देहु जलाय

इतना बचन जरासंध के मुख से निकलते ही, सब असुरों ने उस पहाड़ को जा घेरा, औ नगर नगर गांव गांव से काठ कबाड़ लाय लाय उसके चारों ओर चुन दिया; तिस पर गड़ गूदड़, घी तेल से भिगो डाल के आग लगादी, जद वह आग पर्वत की चोटी तक लहकी, तद उन दोनों भाइयों ने वहां से इस भांति द्वारका की बाट ली कि किसी ने उन्हें जाते भी न देखा; और पहाड़ जल कर भस्म हो गया· उस काल जरासंध श्रीकृष्ण बलराम को उस पर्वत के संग जल मरा जान, अति सुखमान, सब दल साथ ले, मथुरापुरी में आया, औ वहां का राज ले, नगर में ढंढोरा दे उस ने अपना थाना बैठाया, जितने उग्रसेन वसुदेव के पुराने मंदिर थे सो सब ढवाये, औ उस ने आप अपने नये बनवाये॥

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेवजी ने राजा से कहा, कि महाराज! इस रीति से जरासंध को धोखा दे श्रीकृष्ण बलराम जी तो द्वारका में जाय बसे; औ जरासंध भी मथुरा नगरी से चल सब सेना ले अति आनन्द करता निःशंक हो, अपने घर आया· इति॥

॥ ५३ अध्याय ॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले, कि महाराज! अब आगे कथा सुनिये, कि जब कालयवन को मार, जरासंध को धोखा दे, बलदेवजी को साथ ले, श्रीकृष्णचंद आनन्दकन्द जों द्वारका में गये तों सब यदुवंशियों के जी में जी आया, औ सारे नगर में सुख छाया; सब चैन आनन्द से पुरबासी रहने लगे· इस में कितने एक दिन पीछे एक दिन कई एक यदुवंशियों ने राजा उग्रसेन से जा कहा, कि महाराज! अब कहीं बलराम जी का बिवाह किया चाहिये; क्योंकि ये समर्थ हुए· इतनी बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने एक ब्राह्मण को बुलाय, अति समझाय बुझाय के कहा कि देवता; तुम कहीं जाकर अच्छा कुल घर देख, बलराम जी की सगाई कर आओ इतना कह रोली, अक्षत, रुपया, नारियल मंगवा, उग्रसेन जी ने उस ब्राह्मण को तिलक कर, रुपया नारियल दे बिदा किया· वह चला चला आनर्त्त देश में राजा रैवत के यहां गया, और उसकी कन्या रेवती से बलरामजी की सगाई कर, लग्न ठहराय, उसके ब्राह्मण के हाथ टीका लिवाय, द्वारका में राजा उग्रसेन के पास ले आया, और उसने वहां का सब ब्यौरा कह सुनाया, सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति प्रसन्न हो, उस ब्राह्मण को बुलाया, जो टीका ले आया था, मंगलाचार करवाय टीका लिया, और उसे बहुतसा धन दे बिदा किया; पीछे आप सब यदुवंशियों को साथ ले बड़ी धूम धाम से आनर्त्त देश में जाय बलराम जी का ब्याह कर लाये॥

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि ने राजा से कहा, कि पृथ्वीनाथ! इस रीति से तो सब यदुवंशी बलदेव जी का ब्याह कर लाये; और श्री कृष्णचंदजी आपही भाई को साथ ले कुंडलपुर में जाय, भीष्मक नरेश की बेटी रुक्मिणी, शिशुपाल की मांग को राक्षसों से युद्ध कर छीन लाये; उसे घर में लाय ब्याह लिया यह सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से

पूछा, कि कृपासिंधु ! भीष्मकसुता रुक्मिणी को श्री कृष्णचंद कुंडलपुर में जाय, असुरों को मार, किस रीति से लाये सो तुम मुझे समझा कर कहो· श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज! आप मन लगाय सुनिये, मैं सब भेद तहां का समझा कर कहता हूं· कि विदर्भ देश में कुंडलपुर नाम एक नगर, वहां भीष्मकनाम नरेश, जिसका यश छाय रहा चहुं देश· उनके घर में जाय श्री सीताजी ने अवतार लिया; कन्या के आते ही राजा भीष्मक ने ज्योतिषियों को बुलाय भेजा; विन्होंने आय लग्न साध उस लड़की का नाम रुक्मिणी धर कर कहा, कि महाराज ! हमारे विचार में ऐसा आता है कि यह कन्या अति सुशील सुभाव, रूप निधान, गुणों में लक्ष्मी समान होगी, और आदि पुरुष से ब्याही जायगी ॥

इतना बचन ज्योतिषियों के मुख से निकलते ही राजा भीष्मक ने अति सुख मान बड़ा आनन्द किया, औ बहुतसा कुछ ब्राह्मणों को दिया आगे वह लड़की चन्द्रकला की भांति दिन दिन बढ़ने लगी, और बाल लीला कर कर माता पिता को सुख देने; इस में कुछ बड़ी हुई तो लगी सखी सहेलियों के साथ अनेक अनेक प्रकार के अनूठे अनूठे खेल खेलने एक दिन वह मृगनैनी, पिकबैनी, चंपक बरनी, चंद्रमुखी, सखियों के संग आंखमिचोली खेलने नई, तो खेल समय सब सखियां उससे कहने लगीं, कि रुक्मिणी ! तू हमारा खेल खेलने को आई है; क्योंकि जहां तू हमारे साथ अंधेरे में छिपती है, तहां तेरे मुखचंद्र की ज्योति से चांदना हो जाता है, इससे हम छिप नहीं सकतीं यह सुन वह हंसकर चुप हो रही ॥

इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी ने कहा, कि महाराज ! इसी भांति वह सखियों के संग खेलती थी, और दिन दिन छबि उसकी दूनी होती थी, कि इस बीच एक दिन नारदजी कुंडलपुर में आये औ रुक्मिणी को देख, श्री कृष्णचंद के पास द्वारका में जाय उन्हों ने कहा, कि महाराज ! कुंडलपुर में राजा भीष्मक के घर एक कन्या रूप, गुण, शील की खान लक्ष्मी के समान, जन्मी है सो तुम्हारे योग्य है यह भेद जब नारद मुनि से सुन पाया, तभी से रात दिन हरि ने अपना मन उस पर लगाय, महाराज! इस रीति करके तो श्री कृष्णचंद ने रुक्मिणी का नाम गुण सुना, और जैसे रुक्मिणी ने प्रभु का नाम औ यश सुना सो कहता हूं, कि एक समै देश देश के कितने एक याचकों ने जाय, कुंडलपुर में श्री कृष्णचंद का यश गाय, जैसे

प्रभुने मथुरा में जन्म लिया, और गोकुल बृन्दाबन में जाय ग्वाल बालों के संग मिल बालचरित्र किया, और असुरों को मार भूमि का भार उतार यदुबंशियों को सुखदिया था, तैसे ही गाय सुनाया· हरि के चरित्र सुनते ही सब नगर निवासी आश्चर्य कर आपस में कहने लगे, कि जिन की लीला हमने कानों सुनी, तिन्हें कब नैनों देखेंगे इस बीच याचक किसी ढब से राजा भीष्मक की सभा में जाय·प्रभु के चरित्र औ गुण गाने लगे; उस काल,

चढ़ी अटा रुक्मिणी सुंदरी हरि चरित्र धुन श्रवननि परी
अचरज करै भूल मन रहै फेर उझक कर देखन चहै
सुन के कुवर रही मन लाय प्रेम लता उर उपजी आय
भई मगन बिहवल सुंदरी वाकी सुध बुध हरिगुण हरी

यों कह श्री शुकदेवजी बोले, कि पृथ्वीनाथ! इस भांति श्री रुक्मिणी जी ने प्रभु का यश औ नाम सुना, तो विसी दिन से रात दिन आठ पहर चौंसठ घड़ी सोते, जागते, बैठे, खड़े, चलते, फिरते, खाते, पीते, खेलते, तिन्हीं का ध्यान किये रहै, और गुन गाया करै, नित भोर ही उठ स्नान कर मट्टी की गौरी बना, रोरी, अक्षत, पुष्प चढ़ाय, धूप, दीप, नैवेद्य, कर मनाय हाथ जोड़, सिर नाय, उस के आगे कहा करै,

मो पर गौरि कृपा तुम करौ यदुपति पति दे मम दुख हरौ

इसी रीति से सदा रुक्मिणी रहने लगी· एक दिन सखियों के संग खेलती थी, कि राजा भीष्मक उसे देख अपने मन में चिन्ता कर कहने लगा, कि अब यह हुई व्याहन योग, इसे शीघ्र कहीं न दीजे तो हंसेगे लोग· कहा है, कि जिस के घर में कन्या बड़ी होय, तिसका दान पुण्य, जप, तप करना वृथा है· क्योंकि किये से तब तक कुछ धर्म नहीं होता, जब तक कन्या के ऋण से न उतरन होय· यों बिचार, राजा भीष्मक अपनी सभा में आय, सब मंत्री और कुटुंब के लोगों को बुलाय बोले भाइयो! कन्या व्याहन योग हुई, इस के लिये कुलवान, गुणवान, रूप निधान शीलवान कहीं बर ढूंढ़ा चाहिये·

इतनी बात के सुनते ही विन लोगों ने अनेक अनेक देशों के नरेशों के कुल, गुण, रूप, औ पराक्रम कह सुनाये· पर राजा भीष्मक के चित्त

में किसी की बात कुछ न आई तब उन का बड़ा बेटा, जिस का नाम रुक्म, सो कहने लगा, कि पिता! नगर चेदि का राजा शिशुपाल अति बलवान है, और सब भांति से हमारी समान; तिस से रुक्मिणी की सगाई वहां कीजे औ जगत में यश लीजे महाराज! जद उसकी भी बात राजा ने सुनी अनसुनी की, तद तो रुक्मकेश नाम उन का छोटा लड़का बोला,

रुक्मिणि, पिता! कृष्ण कों दीजे, वसुदेव सों सगाई कीजे
यंह सुन भीष्मक हरषे गात, कही, पूत! तें नीकी बात
तू बालक सब सों अति ज्ञानी, तेरी बात भली हम मानी

कहा है

छोटे बड़ेनि पूछ के, कीजे मन परतीति·
सार बचन गह लीजिये, यही जगत की रीति·

ऐसे कह राजा भीष्मक बोले, यह तो रुक्मकेश ने भली बात कही, यदुवंशियों में राजा सूरसेन बड़े यशस्वी और प्रतापी हुए, तिन्हीं के पुत्र वसुदेव जो हैं, सो कैसे हैं, कि जिन के घर में श्री कृष्णचंदजी ने जन्म ले महा बली कंसादिक राक्षसों को मार, औ भूमि का भार उतार, यदुकुल को उजागर किया, और सब यदुवंशियों समेत प्रजा को सुख दिया; ऐसे जो द्वारकानाथ श्री कृष्णचंद जी को रुक्मिणी दें, तो जगत में यश औ बड़ाई लें इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग अति प्रसन्न हो बोले, कि महाराज! यह तो तुमने भली बिचारी, ऐसा बर घर और कहीं न मिलेगा, इस से उत्तम यही है कि श्रीकृष्णचंद ही को रुक्मिणी ब्याह दीजे· महाराज! जब सब सभा के लोगों ने यों कहा तब राजा भीष्मक का बड़ा बेटा जिस का नाम रुक्म था, सुन निपट झुंझलाय के बोला,

समझ न बोलत महा गंवार, जानत नहीं कृष्ण ब्योहार
सोरह बरष नन्द के रह्यो, तब अहीर सब काहू कह्यो
कामरि ओढ़ी गाय चराई, बरहे बैठि छाक तिन खाई

वह तो गंवार ग्वाल है, बिस की जाति पांति का क्या ठिकाना; और जिस के मा बाप ही का भेद जाना नहीं जाता, उसे हम पुत्र किसका कहें कोई नंदगोप का जानता है; कोई वसुदेव का मानता है; पर

आज तक यह भेद किसी ने नहीं पाया कि कृष्ण किस का बेटा है इसी से जो जिस के मन में आता है, सो गाता है महाराज! हमें सब कोई जानता मानता है, और यदुवंशी राजा कब भये; क्या हुआ जो थोड़े दिनों से बल कर उन्होंने बड़ाई पाई, पहला कलंक तो अब न छूटेगा, वह उग्रसेन का चाकर कहाता है, तिस से सगाई कर क्या हम कुछ संसार में यश पावेंगे· कहा है, व्याह, बैर, और प्रीति समान से करिये तो शोभा पाइये, और जो कृष्ण को देंगे तो लोग कहेंगे ग्वाल का सारा, तिस से सब जायगा नाम औ यश हमारा॥

महाराज! यों कह फिर रुक्म बोला, कि नगर चेदि का राजा शिशुपाल बड़ा बली और प्रतापी है, उसके डर से सब थर थर कांपते हैं और परंपरा से उनके घर में राजगद्दी चली आती है इस से अब उत्तम यही है कि रुक्मिणी उसी को दीजे, और मेरे आगे फेर कृष्ण का नाम भी न लीजे; इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग मारे डर के मन ही मन अछता पछता के चुप हो रहे, और राजा भीष्मक भी कुछ न बोला, इसमें रुक्म ने ज्योतिषी को बुलाय शुभ दिन लग्न ठहराय, एक ब्राह्मण के हाथ राजा शिशुपाल के यहां टीका भेजदिया· वह ब्राह्मण टीका लिये चला चला नगर चेदि में जाय राजा शिशुपाल की सभा में पहुंचा, देखते ही राजा ने प्रणाम कर जब ब्राह्मण से पूछा, कहो देवता! आप का आना कहां से हुआ, और यहां किस मनोरथ के लिये आये? तब तो उस विप्र ने असीस दे अपने जाने का सब ब्योरा कहा सुनते ही प्रसन्न हो राजा शिशुपाल ने अपना पुरोहित बुलाय टीका लिया, और फिर ब्राह्मण को बहुतसा कुछ दे बिदा किया पीछे जरासंध आदि सब देश देश के नरेशों को नौत बुलाया, वे अपना दल लेले आये, तब यह भी अपना सब कटक ले व्याहन चढ़ा उस ब्राह्मण ने आ राजा भीष्मक से कहा जो टीका ले गया था, कि महाराज! मैं राजा शिशुपाल को टीका दे आया, वह बड़ी धूम धाम से बरात ले व्याहन को आता है, आप अपना कार्य कीजे॥

यह सुन राजा भीष्मक पहले तो निपट उदास हुए, पीछे कुछ सोच समझ मंदिर में जाय उन्होंने पटरानी से कहा, वह सुन कर लगी मंगलामुखी और कुटुम्ब की नारियों को बुलवाय; मंगलाचार करवाय, व्याह की सब रीति भांति करने, फिर राजा ने बाहर आ· प्रधान और मंत्रियों को आज्ञा

दी, कि कन्या के विवाह में हमें जो जो वस्तु चाहिये सो सो सब इकट्ठी करो· राजा की आज्ञा पाते ही मंत्री और प्रधानों ने सब वस्तु बात की बात में बनवाय मंगवाय लाय धरी; लोगों ने देखा सुना तो यह चरचा नगर में फैली कि रुक्मिणी का विवाह श्री कृष्णचंद से होता था सो दुष्ट रुक्म ने न होने दिया, अब शिशुपाल से होगा॥

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि पृथ्वीनाथ! नगर में तो घर घर यह बात हो रही थी; और राजमंदिर में नारियां गाय बजाय के रीति भांति करती थीं; ब्राह्मण बेद पढ़ पढ़ टेहले करवाते थे, ठौर ठौर दुंदुभी बाजती थीं; बार बार सपल्लव केले के खंभ गाड़ गाड़ के, सोने के कलस भर भर, लोग धरते थे, और तोरण बंदनवार बांधते थे; और एक ओर नगर निवासी न्यारे ही हाट, बाट, चौहट्टे झाड़, बुहार, पट से पाटते थे; इस भांति घर औ बाहर में धूम, मच रही थी कि उसी समै दो चार सखियों ने जा रुक्मिणी से कहा कि,

तोहिं रुक्म शिशुपालहिं दई, अब तू रुक्मिणि! रानी भई
बोली सोच, नाय कर सीस, मन बच मेरे पन जगदीश

इतना कह रुक्मिणि ने अति चिन्ता कर, एक ब्राह्मण को बुलाय हाथ जोड़ उसको बहुत सी बिनती औ बड़ाई कर, अपना मनोरथ उसे सब सुनाय के कहा, कि महाराज! मेरा संदेसा द्वारका लेजाओ, और द्वारकानाथ को सुनाय उन्हें साथ कर ले आओ; तो मैं तुम्हारा बड़ा गुन मानूंगी और यह जानूंगी कि तुमने ही दया कर मुझे श्री कृष्ण बर दिया॥

इतनी बात के सुनते ही वह ब्राह्मण बोला, अच्छा तुम संदेसा कहो मैं ले जाऊंगा, और श्री कृष्णचंद को सुनाऊंगा; वे कृपानाथ हैं जो कृपा कर मेरे संग आवेंगे तो ले आऊंगा इतना बचन जों ब्राह्मण के मुख से निकला, तों हीं रुक्मिणी जी ने एक पाती प्रेमरंग राती लिख उस के हाथ दी, और कहा कि श्री कृष्णचंद आनन्दकन्द को पाती दे, मेरी ओर से कहियो, कि उस दासी ने कर जोड़ अति बिनती कर कहा है, जो आप अंतर्यामी हैं, घट घट की जानते हैं अधिक क्या कहूंगी मैंने तुम्हारी शरण ली है, अब मेरी लाज तुम्हें है, जिस में रहे सो कीजे और इस दासी को आय बेग दर्शन दीजे॥

महाराज! ऐसे कह सुन जब रुक्मिणी जी ने उस ब्राह्मण को बिदा किया, तब वह प्रभु का ध्यान कर, नाम लेता, द्वारका को चला और हरि इच्छा से बात के कहते जा पहुंचा· वहां जाय देखा तो समुद्र के बीच वह पुरी है जिसके चहुं ओर बड़े बड़े पर्वत और बन उपबन शोभा दे रहे हैं, तिन में भांति भांति के पशु पक्षी बोल रहे हैं; औ निर्मल जल भरे सुथरे सरोवर, तिन में कमल डहडहाय रहे, तिन पर भौंरों के झुंड के झुंड गूंज रहे; और तीर पै हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे, कोसों तक अनेक अनेक प्रकार के फल फूलों की बाड़ियां चली गई हैं; तिन की बाड़ों पर पनबाड़ियां लहलहा रही हैं; बावड़ी इंदारों पै खड़े मीठे सुरों से गाय गाय माली रहंट परोहे चलाय चलाय, ऊंचे नीचे नीर सींच रहे हैं; और पनघटों पर पनिहारियों के ठट्ठ के ठट्ठ लगे हुए हैं॥

यह छबि निरख हरख, वह ब्राह्मण जों आगे बढ़ा तों देखता क्या है, कि नगर के चारों ओर अति ऊंचा कोट, उस में चार फाटक, तिन में कंचन खचित जड़ाऊ किवाड़ लगे हुए हैं, और पुरी के भीतर चांदी सोने के मणिमय पचखने, सतखने, मंदिर ऊंचे ऐसे, कि आकाश से बातें करें, जगमगाय रहे हैं; तिन के कलस कलसियां बिजली सी चमकती हैं; बरन बरन की ध्वजा पताका फहराय रही हैं; खिड़की, झरोखों, मोखों, जालियों से सुगंध की लपटें आय रही हैं; द्वार द्वार सपल्लव केले के खंभ और कांचन कलस भरे धरे हैं; तोरण बंदनवारें बंधी हुई हैं और घर घर आनन्द के बाजन बाज रहे हैं; ठौर ठौर कथा पुराण और हरि चरचा हो रही है; अठारह बरन सुख चैन से बास करते हैं, सुदर्शनचक्र पुरी की रक्षा करता है॥

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले, कि राजा! ऐसी जो सुन्दर सुहावनी द्वारकापुरी तिसे देखता देखता वह ब्राह्मण राजा उग्रसेन की सभा में जा खड़ा हुआ, और असीस कर वहां इसने पूछा, कि श्री कृष्णचंद कहां बिराजते हैं? तब किसी ने इसे हरि का मंदिर बताय दिया यह जों द्वार पर जाय खड़ा हुआ, तों द्वारपालों ने इसे देख दंडवत कर पूछा;

को हो आप कहां तें आये, कौन देश की पाती लाये

यह बोला, ब्राह्मण हूं, और कुंडलपुर का रहनेवाला; राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी, उसकी चिट्ठी श्री कृष्णचंद को देने आया हूं॥

बात के सुनते ही पैारियों ने कहा, महाराज! आप मंदिर में पधारिये, श्री कृष्णचंद सोंहीं सिंहासन पर बिराजते हैं· बचन सुन ब्राह्मण जों भीतर गया, तों हरि ने देखते ही सिंहासन से उतर, दंडवत कर अति आदर मान किया, श्री सिंहासन पर बिठाय, चरण धोय; चरणामृत लिया, और ऐसे सेवा करने लगे जैसे कोई अपने इष्ट की सेवा करे; निदान प्रभु ने सुगंध उपटन लगाय, न्हिलाय, धुलाय, पहले तो उसे षटरस भोजन करवाया, पीछे बीड़ा दे, केसर चंदन से रच रच, फूलों की माला पहिराय, मणिमय मंदिर में लेजाय एक सुथरे जड़ाऊ छपरखट में लिटाया· महाराज! वह भी बाट का हारा थका तो था ही, लेटते ही सुख पाय सो गया· श्रीकृष्णजी कितनी एक बेर तक तो उस की बातें सुनने की अभिलाषा किये वहां बैठे, मन ही मन कहते रहे कि अब उठे अब उठे, निदान जब देखा कि नहीं उठा, तब आतुर हो उसके पैताने बैठ, लगे पांव दाबने इस में उसकी नींद टूटी तो वह उठ बैठा तद हरि ने तिसको छेम कुसल पूछ पूछा·

नीको राज देश तुम तनों, हमसों भेद कहो आपनों
कौन काज यहां आवन भयो, दरस दिखाइ हमें सुख दयो

ब्राह्मण बोला, कि कृपानिधान! आप चित्त दे सुनिये, मैं अपने आने का कारण कहता हूं; कि महाराज! कुण्डलपुर के राजा भीष्मक की कन्या नें जब से आप का नाम औ गुण सुना है, तभी से वह निस दिन तुम्हारा ध्यान किये रहती है, और कमल चरण की सेवा किया चाहती थी, और संयोग भी आय बना था· पर बात बिगड़ गयी· प्रभु बोले सो क्या?

ब्राह्मण ने कहा दीनदयाल! एक दिन राजा भीष्मक ने अपने सब कुटुंब औ सभा के लोगें को बुलाय के कहा, कि भाइयो! कन्या ब्याहन योग भयी, अब इसके लिये बर ठहराया चाहिये· इतना बचन राजा के मुख से निकलते ही, तिन्हों ने अनेक अनेक राजाओं का कुल, गुण, नाम औ पराक्रम, कह सुनाया; पर इनके मन में न आया; तद रुक्मकेश ने आप का नाम लिया, तो प्रसन्न हो राजा ने उसका कहना मान लिया और सब से कहा, कि भाइयो! मेरे मन में तो इसकी बात पत्थर की लकीर हो चुकी; तुम क्या कहते हो? वे बोले महाराज! ऐसा घर, बर, जो त्रिलोकी में

ढूंढ़ियेगा तो भी न पाइयेगा; इससे अब उचित यही है कि बिलंब न कीजै, शीघ्र श्रीकृष्णचंद से रुक्मिणी का बिवाह कर दीजै· महाराज! यह बात ठहर चुकी थी, इस में रुक्म ने भांजी मार रुक्मिणी की सगाई शिशुपाल से की, अब वह सब असुर दल साथ ले ब्याहन को चढ़ा है॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले, कि पृथ्वी नाथ! ऐसे उस ब्राह्मण ने सब समाचार कह रुक्मिणी जी की चीठी हरि के हाथ दी प्रभुने अति हित से पाती ले छाती से लगाय ली, औ पढ़ कर प्रसन्न हो ब्राह्मण से कहा, देवता! तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारे साथ चल, असुरों को मार, उनका मनोरथ पूरा करूंगा· यह सुन ब्राह्मण को तो धीरज हुआ, हरि रुक्मिणी का ध्यान कर चिन्ता करने लगे॥ इति॥

॥ ५४ अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे राजा! श्रीकृष्णचंद ने ऐसा उस ब्राह्मण को ढाढ़स बंधाय फिर कहा,

जैसे घिस के काठ तें काढ़हिं ज्वाला जारि
तैसे सुंदरि ल्याय हों दुष्ट असुर दल मारि

इतना कह फिर सुथरे वस्त्र आभूषण, मन मानते पहन, राजा उग्रसेन के पास जाय प्रभु ने हाथ जोड़ कर कहा, महाराज! कुण्डलपुर के राजा भीष्मक ने अपनी कन्या देने को पत्र लिख, पुरोहित के हाथ मुझे अकेला बुलाया है, जो आप आज्ञा दें तो जाऊं औ उसकी बेटी ब्याह लाऊं,

सुन कर उग्रसेन यों कहै, दूर देश कैसे मन रहै
तहां अकेले जात मुरारि, मत काहू सों उपजे रारि

तब तुम्हारे समाचार हमैं यहां कौन पहुंचावेगा· यों कह पुनि उग्रसेन बोले, कि अच्छा, जो तुम वहां जाया चाहते हो तो अपनी सब सेना साथ ले दोनों भाई जाओ, और ब्याह कर शीघ्र चले आओ· वहां किसी से लड़ाई झगड़ा न करना क्योंकि तुम चिरंजीव हो तो सुन्दरी बहुत आय रहेंगी· आज्ञा पाते ही श्रीकृष्णचंद बोले, कि महाराज! तुमने सच कहा, पर मैं आगे चलता हूं, आप कटक समेत बलरामजी को पीछे से भेज दीजियेगा॥

ऐसे कह हरि, उग्रसेन वसुदेव से बिदा हो उस ब्राह्मण के निकट आये, औ रथ समेत अपने दारुक सारथी को बुलवाया· वह प्रभु की आज्ञा पाते ही चार घोड़े का रथ तुरंत जोत लाया; तद श्रीकृष्णचंद उस पै चढ़े औ ब्राह्मण को पास बिठाय, द्वारका से कुंडलपुर को चले, जों नगर के बाहर निकले, तों देखते क्या हैं कि दाहिनी ओर तो मृग के झुंड चले जाते हैं औ सन्मुख से सिंह सिंहनी अपना भक्ष्य लिये गरजते आते हैं· यह शुभ सगुन देख ब्राह्मण अपने जी में बिचार कर बोला· कि महाराज इस समय इस सगुन के देखने से मेरे बिचार में यह आता है, कि जैसे ये अपना काज साध के आते हैं, तैसे ही तुम भी अपना काज सिद्ध कर आओगे· श्रीकृष्णचंद बोले, आप की कृपा से· इतना कह हरि वहां से आगे बढ़े, औ नये नये देश, नगर, गांव देखते देखते कुंडलपुर में जा पहुंचे, तो तहां देखा, कि ठौर ठौर ब्याह की सामा जो संजोय धरी है, तिस से नगर की छबि कुछ और की और हो रही है·

झारें गली चौहटे छावें, चोआ चंदन सों छिरकावें
पोय सुप्यारी झौंरा, किये, बिच बिच कनिक नारियर दिये
हरे पात फल फूल अपार, ऐसी घर घर बन्दनवार
ध्वजा, पताका, तोरण तने, सुठव्र कलस कंचन के बने

और घर घर में आनन्द हो रहा है महाराज! यह तो नगर की शोभा थी औ राजमंदिर में जो कुतूहल हो रहा था, उसका वर्णन कोई क्या करे· वह देखे ही बनिआवे· आगे श्रीकृष्णचंद ने सब नगर देख आ राजा भीष्मक की बाड़ी में डेरा किया, औ शीतल छांह में बैठ, ठंढे हो उस ब्राह्मण से कहा, कि देवता! तुम पहले हमारे आने का समाचार रुक्मिणीजी को जा सुनाओ, जो वे धीरज धर अपने मन का दुःख हरें पीछे वहां का भेद हमें आ बताओ, जो हम फिर उसका उपाय करें· ब्राह्मण बोला, कि कृपानाथ! आज ब्याह का पहला दिन है, राजमंदिर में बड़ी धूमधाम हो रही है, मैं जाता हूं, पर रुक्मिणी जी को अकेली पाय आप के आने का भेद कहूंगा· यों सुनाय ब्राह्मण वहां से चला- महाराज! इधर से हरि तो यों चुप चाप अकेले पहुंचे और उधर से राजा शिशुपाल, जरासंध समेत सब असुर दल लिये, इस धूम से आया कि जिस

का वारापार नहीं, औ इतनी भीड़ संग कर लाया, कि जिसके बोझ से लगा शेषनाग डगमगाने, और पृथ्वी उथलने; इसके आने की शोध पाय राजा भीष्मक अपने मंत्री औ कुटुंब के लोगों समेत आगू बढ़ लेने गये और बड़े आदर मान से अगोनी कर, सब को पहरावनी पहराय रत्न-जटित शस्त्र आभूषण औ हाथी घोड़े दे· उन्हें नगर में ले आये, औ जनवासा दिया, फिर खाने पीने का सामान किया ॥

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! अब मैं अंतर कथा कहता हूं आप चित्त लगाय सुनिये, कि जब श्रीकृष्णचंद द्वारका से चले, तिसी समय सब यदुवंशियों ने जाय, राजा उग्रसेन से कहा कि महाराज! हमने सुना है जो कुंडलपुर में राजा शिशुपाल, जरासंध समेत सब असुर दल ले, व्याहन आया है और हरि अकेले गये हैं, इस से हम जानते हैं कि वहां श्रीकृष्णजी से औ उन से युद्ध होगा· यह बात जानके भी हम अजान हो हरि को छोड़ यहां कैसे रहैं, हमारा मन तो मानता नहीं; आगे जो आप आज्ञा कीजे सो करें ॥

इस बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति भय खाय, घबराय, बलराम जी को निकट बुलाय, समझाय के कहा, कि तुम हमारी सब सेना ले श्रीकृष्ण के न पहुंचते न पहुंचते शीघ्र कुंडलपुर जाओ और उन्हें अपने संग कर ले आओ· राजा की आज्ञा पाते ही बलदेवजी छप्पन करोड़ यादव जोड़ के कुंडलपुर को चले· उस काल कटक के हाथी काले, धौले धूमरे, दल बादल से जनाते थे; औ उनके श्वेत श्वेत दांत बगपांति से, धौंसा मेघ सा गरजता था; औ शस्त्र बिजली से चमकते थे; राते पीले बागे पहने घुड़चढ़ों के टोल के टोल जिधर तिधर दृष्टि आते थे; रथों के तांतों के तांते झमझमाते चले जाते थे इस बीच सब दल लिये चले चले कुंडलपुर में हरि के पहुंचते ही बलराम जी भी जा पहुंचे· यों सुनाय फिर श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! श्रीकृष्णचंद रूपसागर, जगत उजागर, तो इस भांति कुंडलपुर पहुंच चुके थे, पर रुक्मिणी ने प्रभु के आने का समाचार न पाय,

बिलख बदन चितवै चहुं ओर जैसे चंद मलिन भय भोर
अति चिन्ता सुन्दर जिय बाढ़ी देखे ऊंच अटा पर ठाढ़ी

चढ़ि चढ़ि उझके खिरकी द्वार, नैननि में छांड़े जल धार
बिलख बदन अति मलिन मन लेत उसास निसास
व्याकुल बरषा नैन जल सोचत कहत उदास

कि अब तक क्यों नहीं आये हरि, विन का तो नाम है अंतर्यामी ऐसी मुझ से क्या चूक पड़ी, जो अब लग तिन्होंने मेरी सुध न ली, क्या ब्राह्मण वहां नहीं पहुंचा; के हरि ने मुझे कुरूप जान मेरी प्रीति की प्रतीति न करी· के जरासंध का आना सुन प्रभु न आये, कल ब्याह का दिन है· और असुर आय पहुंचा, जो वह कल मेरा कर गहेगा, तो यह पापी जीव हरि बिन कैसे रहेगा, जप, तप, नेम, धर्म कुछ आड़े न आया अब क्या करूं, और किधर जाऊं, अपनी बरात ले आया शिशुपाल, कैसे बिरमे प्रभु दीन दयाल ॥

इतनी बात जब रुक्मिणी जी के मुंह से निकली, तब एक सखी ने तो कहा कि, दूर देश बिन पिता बंधु की आज्ञा हरि कैसे आवेंगे औ दूसरी बोली, कि जिनका नाम है अन्तर्यामी दीन दयाल, वे बिन आये न रहेंगे· रुक्मिणी तू धीरज धर व्याकुल न हो; मेरा यह मन हांमी भरता है कि अभी आय कोई यों कहता है कि हरि आये· महाराज! ऐसे वे दोनों आपस में बतकहाव कर रही थीं, कि वैसे में ब्राह्मण ने जाय असीस दे कहा, कि श्रीकृष्णचन्द जी ने आय राजबाड़ी में डेरा किया और सब दल लिये बलदेव जी पीछे से आते हैं· ब्राह्मण को देखते औ इतनी बात के सुनते ही, रुक्मिणी जी के जी में जी आया; और उन्हों ने उस काल ऐसा सुख माना, कि जैसे तपी तप का फल पाय सुख माने ॥

आगे श्री रुक्मिणीजी हाथ जोड़ सिर झुकाय उस ब्राह्मण के सन्मुख कहने लगीं, कि आज तुमने आय हरि का आगमन सुनाय मुझे प्राण दान दिया· मैं इसके पलटे क्यादूं, जो त्रिलोकी की माया दूं तो भी तुम्हारे ऋण से उतरन न होऊं, ऐसे कह मन मार सकुचाय रही; तद वह ब्राह्मण अति संतुष्ट हो, आशीर्बाद कर, वहां से उठ, राजा भीष्मक के पास गया और उसने श्रीकृष्ण के आने का व्यारा सब समझाय के कहा, सुनत प्रमाण राजा भीष्मक उठ धाया, और चला चला वहां आया जहां बाड़ी

में श्री कृष्ण बलराम सुखधाम बिराजते थे· आते ही साष्टांग प्रणाम कर सन्मुख खड़े हो हाथ जोड़ के कहा, राजा भीष्मक ने,

मेरे मन बच हे तुम हरो, कहा कहों जो दुष्टन करी

अब मेरा मनोर्थ पूर्ण हुआ जो आपने आय दर्शन दिया· यों कह प्रभु के डेरे करवाय राजा भीष्मक तो अपने घर आय चिंता कर ऐसे कहने लगा·

हरि चरित्र जाने सब कोइ क्या जानें अब कैसी होइ

और जहां श्री कृष्ण बलदेव थे, तहां नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष, आय आय, सिर नाय नाय, प्रभु का यश गाय गाय, सराहि सराहि आपस में यों कहते थे, कि रुक्मिणी योग्य बर श्री कृष्ण ही हैं, बिधाता करे यह जोरी जुरे, और चिरंजीव रहे, इस बीच दोनों भाइयों के कुछ जो जी में आया तो नगर देखने चले, उस समै ये दोनों भाई जिस हाट, बाट, चौहटे में हो जाते थे, तहीं नगर नारियों के ठट्ठ के ठट्ठ लग जाते थे, और वे उनके ऊपर चोवा, चंदन, गुलाब नीर, छिड़क छिड़क फूल बरसाय बरसाय हाथ बढ़ाय प्रभु को आपस में यों कह कह बताते थे,

नीलांबर ओढ़े बलराम, पीतांबर पहने घनश्याम
कुंडल चपल मुकुट सिर धरे, कमल नयन चाहत मन हरे

औ ये देखते जाते थे· निदान सब नगर औ राजा शिशुपाल का कटक देख ये तो अपने दल में आये, औ इनके आने का समाचार सुन राजा भीष्मक का बड़ा बेटा अति क्रोधकर अपने पिता के निकट आय कहने लगा कि सच कहो, कृष्ण यहां किस का बुलाया आया, यह भेद मैंने नहीं पाया, बिन बुलाये यह कैसे आया; व्याह·काज है सुख का धाम, इसमें इसका है क्या काम; ये दोनों कपटी कुटिल जहां जाते हैं, तहां ही उत्पात मचाते हैं; जो तुम अपना भला चाहो तो तुम मुझ से सत्य कहो ये किस के बुलाये आये ॥

महाराज! रुक्म ऐसे पिता को धमकाय, यहां से उठ, सात पांच करता वहां गया, जहां राजा शिशुपाल और जरासंध अपनी सभा में बैठे थे, और उनसे कहा कि यहां रामकृष्ण आये हैं, तुम अपने सब लोगों को जता दो जो सावधानी से रहें इन दोनों भाइयों का नाम सुनते ही,

राजा शिशुपाल तो हरि चरित्र का लख ब्योहार, जो हार, करने लगा मन हीं मन बिचार श्री जरासंध कहने, कि सुनों जहां ये दोनों आवें हैं, तहां कुछ न कुछ उपद्रव मचावें हैं, ये महाबली ओर कपटी हैं इन्हों ने ब्रज में कंशादि बड़े बड़े राक्षस सहज सुभाव ही मारे, इन्हें तुम मत जानों बारे, कभी किसी से लड़ कर नहीं हारे, श्री कृष्णने सचह बेर मेरा दल हना, जब मैं अठारहवीं बेर चढ़ आया, तब यह भाग पर्बत पै जा चढ़ा, जों मैंने उसमें आग लगायी, तों यह छल कर द्वारका को चला गया ॥

याको काहू भेद न पायो, अब यहां करन उपद्रव आयो
है यह छली महा छल करै, काहू पै नहिं जान्यो परै

इस से अब ऐसा कुछ उपाय कीजे, जिस से हम सबों की पति रहे, इतनी बात जब जरासंध ने कही, तब रुक्म बोला, कि वे क्या बस्तु हैं; जिनके लिये तुम इतने भावित हो; विन्हें तो मैं भली भांति से जानता हूं कि बन बन गाते नाचते बेनु बजाते, धेनु चराते फिरते थे, वे बालक गंवार युद्ध बिद्या की रीति क्या जाने, तुम किसी बात की चिन्ता अपने मन में मत करो, हम सब यदुवंशियों समेत कृष्ण बल-राम को क्षण भर में मार हटावेंगे ॥

श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज ! उस दिन रुक्म तो जरासंध औ शिशुपाल को समझाय बुझाय, ढाढ़स बंधाय, अपने घर आया औ उन्हों ने सात पांच कर रात गंवायी भोर होते ही इधर राजा शिशुपाल औ जरासंध तो ब्याह का दिन जान बरात निकालने की धूम धाम में लगे; और उधर राजा भीष्मक के यहां मंगलाचार होने लगे; इस में रुक्मिणी जी ने उठते ही एक ब्राह्मण के हाथ, श्री कृष्णचन्द से कहला भेजा, कि कृपानिधान ! आज ब्याह का दिन है, दो घड़ी दिन रहे नगर के पूर्ब देवी का मंदिर है, तहां मैं पूजा करने जाऊंगी· मेरी लाज तुम्हें है जिसमें रहे सो करियेगा ॥

आगे पहर एक दिन चढ़े सखी सहेली औ कुटुंब की स्त्रियां आयीं विन्हों ने आते ही पहले तो आंगन में गजमोतियों का चौक पुरवाय कंचन की जड़ाऊ चौकी बिछवाय, तिस पर रुक्मिणी को बिठाय सात सुहागिनों

से तेल चढ़वाय; पीछे सुगंध उपटन लगाय न्हिलाय धुलाय उसे सोलह सिंगार करवाय, बारह आभूषण पहराय, ऊपर राता चोला उढ़ाय, बनो बनाय बिठाया; इतने में घड़ी चार एक दिन पिछला रह गया, उस काल रुक्मिणी बाल, अपनी सब सखी सहेलियों को साथ ले, बाजे गाजे से देवी की पूजा करने को चली, तो राजा भीष्मक ने अपने लोग रखवाली को उसके साथ कर दिये·

ये समाचार पाय कि राजकन्या नगर के बाहर देवी पूजने चली है, राजा शिशुपाल ने भी श्रीकृष्णचंद के डर से अपने बड़े बड़े रावत, सावंत, शूर, बीर, योधाओं को बुलाय, सब भांति के ऊंच नीच समझाय बुझाय, रुक्मिणी जी की चौकसी को भेज दिया· वेभी आय अपने अपने अस्त्र शस्त्र संवार राजकन्या के संग हो लिये उस बिरियां रुक्मिणी जी सब सिंगार किये, सखी सहेलियों के झुंड के झुंड लिये अंतरपट की ओट में और काले काले राक्षसों के कोट में जाती, ऐसी शोभायमान लगती थीं, कि जैसे श्याम घटा के बीच तारा मंडल समेत चन्द; निदान कितनी एक बेर में चलीं चलीं देवी के मंदिर में पहुंचीं; वहां जाय हाथ पांव धोय, आचमन कर, शुद्ध होइ, राजकन्या ने पहले तो चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवद्य कर, श्रद्धा समेत बेद की बिधि से देवी की पूजा की, पीछे ब्राह्मणियों को इच्छा भोजन करवाय, सुथरी तीयलें पहराय, रोली की खौड़ काढ़ अक्षत लगाय, उन्हें दक्षिणा दी, औ उन से असीस ली·

आगे देवी की परिक्रमा दे, वह चंदमुखी, चंपक बरनी, मृगनयनी, पिकबयनी, गजगामिनी, सखियों को साथ ले हरि के मिलने की चिंता किये जों वहां से निचिंत हो चलने को हुई, तों श्रीकृष्णचंद भी अकेले रथ पर बैठ वहां पहुंचे, जहां रुक्मिणी के साथी सब योधा अस्त्र शस्त्र से जकड़े खड़े थे· इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले, कि

पूजि गौरि जब ही चली । एक कहति अकुलाय
सुन सुंदरि ! आये हरि । देख ध्वजा फहराय

यह बात सखी से सुन, औ प्रभु के रथ की वैरख देख, राजकन्या अति आनन्द कर फूली अंग न समाती थी, और सखी के हाथ पर हाथ दिये, मोहनी रूप किये, हरि के मिलने की आस लिये, कुछ कुछ मुस्कराती,

ऐसे सब के बीच मंदगति जाती थी, कि जिसकी शोभा कुछ बरनी नहीं जाती· आगे श्रीकृष्णचंद को देखते ही सब रखवाले भूले से खड़े हो रहे औ अंतरपट उनके हाथ से छूट पड़ा, इस में मोहनी रूप से रुक्मिणी जी को जों उन्होंने देखा तों और भी मोहित हो ऐसे शिथिल हुए कि जिन्हें अपने तन मन की भी सुध नथी ॥

भृकुटी धनुष चढ़ाय, अंजन बरुनी पनचकै·
लोचन बाण चलाय, मारे, पै जीवत रहे·

महाराज! उस काल सब राक्षस तो चित्र कैसे कढ़े खड़े देखते ही रहे, और श्रीकृष्णचंद सब के बीच रुक्मिणी के पास रथ बढ़ाय जाय खड़े हुए, प्राणपति को देखते ही उसने सकुच कर मिलने को जों हाथ बढ़ाया, तों प्रभुने बायें हाथ से उठाय उसे रथ पर बैठाया·

कांपत गात सकुच मन भारी, छांड़ सबन हरि संग सिधारी
जों बैरागी छांड़े गेह, कृष्ण चरण सों करे सनेह

महाराज! रुक्मिणी जी ने तो जप, बृत, पुण्य किये का फल पाया औ पिछला दुःख सब गंवाया; बैरी अस्त्र शस्त्र लिये खड़े मुख देखते रहे प्रभु उनके बीच से रुक्मिणी को ले ऐसे चले, कि

जों बहु भुंडनि स्यार के, परे सिंह बिच आय·
अपनो भक्षण लेइ कै, चले निडर घहराय·

आगे श्रीकृष्णचंद के चलते ही बलराम जी भी पीछे से धौंसा दे सब दल साथ ले जा मिले· ॥ इति ॥

॥ ५५ अध्याय ॥

श्रीशुकदेव जी बोले, कि महाराज! कितनी एक दूर जाय श्रीकृष्णचंद ने रुक्मिणी जी को सोच संकोच युत देख कर कहा, कि सुन्दरि! अब तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, मैं शंखध्वनि कर सब तुम्हारे मन का डर हरूंगा, औ द्वारका में पहुंच वेद की बिधि से बरूंगा· यों कह प्रभु ने उसे अपनी माला पहिराय, बाईं ओर बैठाय, जों शंखध्वनि करी त्यों

शिशुपाल औ जरासंध के साथी सब चौंक पड़े, यह बात सारे नगर में फैलगई कि हरि रुक्मिणी को हर ले गये ॥

इस में रुक्मिणी हरण अपने विन लोगों के मुख से सुन, कि जो चौकसी को राजकन्या के संग गये थे; राजा शिशुपाल औ जरासंध अति क्रोध कर झिलम, टोप पहन, पेटी बांध सब शस्त्र लगाय, अपना अपना कटक ले लड़ने को श्रीकृष्ण के पीछे चढ़ दौड़े, औ उन के निकट जाय, आयुध संभालसंभाल ललकारे, अरे! भागे क्यों जाते हो, खड़े रहो शस्त्र पकड़ लड़ो! जो छत्री शूर बीर हैं; वे खेत में पीठ नहीं देते· महाराज! इतनी बात के सुनते ही यादव फिर सन्मुख हुए, और लगे दोनों ओर से शस्त्र चलने· उस काल रुक्मिणी बाल अति भयमान घूंघट की ओट किये, आंसू भर भर लंबी सांसे लेती थीं, और प्रीतम का मुख निरख निरख मन ही मन बिचार कर, यों कहती थीं कि ये मेरे लिये इतना दुःख पाते हैं, अंतर्यामी प्रभु रुक्मिणी के मन का भेद जान बोले, कि सुन्दरि! तू क्यों डरती है, तेरे देखते ही देखते सब असुर दल को मार भूमि का भार उतारता हूं· इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि राजा!

यादव असुरन सों लरत, होत महा संग्राम
ठाढ़े देखत कृष्ण हैं, करत युद्ध बलराम·

मारू बाजता है; कड़खेत कड़खा गाते हैं, चारण यश बखानते हैं, अश्वपति अश्वपति से, गजपति गजपति से, रथी रथी से, पैदल पैदल से, भिड़ रहे हैं; इधर उधर के शूरबीर पिल पिल के हाथ मारते हैं, और कायर खेत छोड़ अपना जी ले भागते हैं, घायल खड़े झूमते हैं; कबंध हाथ में तलवार लिये चारों ओर घूमते हैं, और लोथ पर लोथ गिरती हैं, तिन से लोहू की नदी बह चली है, तिसमें जहां तहां हाथी जो मरे पड़े हैं, सो टापू से जनाते हैं, और सूंडें मगरसी गिद्ध, शाल कूकर, आपस में लड़ लड़ लोथें खैंच२ लाते हैं, और फाड़ फाड़ खाते हैं; कौवे आंखें निकाल निकाल· घड़ों से ले जाते हैं, निदान देखते ही देखते बलराम जी ने सब असुर दल यों काट डाला, कि जों किसान खेती काट डाले आगे जरासंध और शिशुपाल सब दल कटाय, कई एक घायल संग लिये भाग के एक ठोर जों खड़े रहे तहां शिशुपाल ने बहुत अछताय

पछताय सिर डुलाय जरासंध से कहा कि अब तो अपयश पाय, और कुल को कलंक लगाय, संसार में जीना उचित नहीं इस से आप आज्ञा दें तो मैं रण में जाय लड़ मरूं ॥

नातर हों करि हों बन बास, लेउं योग छांड़ों सब आस
गयो आन, पत अब क्यों जीजे, राखि प्राण क्यों अपयश लोजे

इतनी बात सुन जरासंध बोला, कि महाराज! आप ज्ञानमान हैं औ सब बात में जान· मैं तुम्हें क्या समझाऊं; जो ज्ञानी पुरुष हैं सो हुई बात का सोच नहीं करते, क्योंकि भले बुरे का कर्त्ता वही है, मनुष्य का कुछ बस नहीं, यह परवश पराधीन है; जैसे काठ की पुतली को नटुआ जो जों नचाता है तों नाचती है, ऐसे मनुष्य करता के वश है, वह जो चाहता है सो करता है, इस से सुख दुख में हर्ष शोक न कीजे सब सपना सा जान लीजे, मैं तेईस तेईस अक्षौहिणी ले मथुरापुरी पर १७ बेर चढ़गया और इसी कृष्णाने सत्रह बेर मेरा सब दल हना, मैंने कुछ सोच न किया, और अठारवीं बेर जद इसका दल मारा तद कुछ हर्ष भी न किया, यह भाग कर पहाड़ पर जा चढ़ा, मैंने इसे वहीं फूंक दिया· न जानिये यह क्योंकर जिया· इसकी गति कुछ जानी नहीं जाती· इतना कह फिर जरासंध बोला, कि महाराज! अब उचित यही है जो इस समय को टाल दीजे; कहा है कि प्राण बचे तो पीछे सब हो रहता है जैसे हमें हुआ कि सत्रह बेर हार अठारवीं बेर जीते, इस से जिस में अपनी कुशल होय सो कीजे· और हट छोड़ दीजे ॥

महाराज! जब जरासंध ने ऐसे समझाय के कहा, तद उसे कुछ धीरज हुआ औ जितने घायल जोधा बचे थे तिन्हें साथ ले अछताय पछताय जरासंध के संग हो लिया· ये तो यहां से यों हार के चले; और जहां शिशुपाल का घर था तहां की बात सुनों, कि पुत्र का आगमन बिचार शिशुपाल की मा जों मंगलाचार करने लगी तों सन्मुख छींक हुई, और दाहिनी आंख उसकी फड़कने लगी· यह अशगुन देख विसका माथा ठनका कि इस बीच किसी ने आय कहा जो तुम्हारे पुत्र की सब सेना कटगई और दुलहन भी न मिली, अब वहां से भाग अपना जीव लिये आता है इतनी बात के सुनते ही शिशुपाल की महतारी अति चिंता कर अबाक हो रही ॥

आगे शिशुपाल और जरासंध का भागना सुन रुक्म अति क्रोध कर अपनी सभा में आन बैठा और सब को सुनाय कहने लगा, कि कृष्ण मेरे हाथ से बच कहां जा सकता है, अभी जाय विसे मार रुक्मिणी को ले आऊं तो मेरा नाम रुक्म नहीं तो फिर कुंडलपुर में न आऊं· महाराज! ऐसे पैज कर रुक्म अक्षोहिणी दल ले श्रीकृष्णचन्द से लड़ने को चढ़ धाया और उसने यादवों का दल जा घेरा उस काल विसने अपने लोगों से कहा कि तुम तो यादवों को मारो औ मैं आगे जाय कृष्ण को जीता पकड़ लाता हूं· इतनी बात के सुनते ही उसके साथी तो यदुवंशियों से युद्ध करने लगे औ यह रथ बढ़ाय श्रीकृष्णचन्द के निकट जाय ललकार के बोला, अरे कपटी गंवार! तू क्या जाने राज व्योहार, बालकपन में जैसे तैंने दूध दही की चोरी करी तैसे तू ने यहां भी आय सुन्दरी हरी॥

ब्रजवासी हम नहीं अहीर, ऐसे कह कर लीने तीर
विष के बुझे लिये उन बीन, खैंच धनुष शर छोड़े तीन

उन बाणों को आते देख श्रीकृष्णचन्द ने बीच ही काटा फिर रुक्म ने और बाण चलाये, प्रभु ने वे भी काट गिराये, ज्यों अपना धनुष संभाल कर एक बाण ऐसा मारा, कि रथ के घोड़ों समेत सारथी उड़ गया और धनुष उसके हाथ से कट नीचे गिरा, पुनि जितने आयुध उसने लिये हरि ने सब काट काट गिरा दिये, तब तो वह अति झुंझलाय फरी खांड़ा उठाय रथ से कूद श्रीकृष्णचन्द की ओर यों झपटा, कि जैसे बावला गीदड़ गज पर आवे, कै जों पतंग दीपक पर धावे, निदान जाते ही उसने हरि के रथ पर एक गदा चलाई, कि प्रभु ने झट उसे पकड़ बांधा, और चाहा कि मारें; इस में रुक्मिणी जी बोलीं॥

मारो मत भैया है मेरो, छांड़ो नाथ! तिहारो चेरो

इतना कह फिर कहने लगीं, कि साधु जड़ औ बालक का अपराध मन में नहीं लाते, जैसे कि सिंह स्वान के भूकने पर ध्यान नहीं करता; और जो तुम इसे मारोगे तो होगा मेरे पिता को सोग, यह करना तुम्हें नहीं है योग जिस ठौर तुम्हारे चरण पड़ते हैं, तहां के सब प्राणी आनन्द में रहते हैं, यह बड़ी अचरज की बात है, कि तुमसा सगा रहते राजा भीष्मक

पुत्र का दुःख पावे· महाराज! ऐसे कह एक बार तो रुक्मिणी यों बोलीं कि महाराज! तुमने भला हित संबंधी से किया, जो पकड़ बांधा; और खड्ग हाथ में ले मारने को उपस्थित हुए· पुनि अति व्याकुल हो, थरथराय, आखें डबडबाय बिसूर बिसूर, पाओं पड़, गोद पसार कहने लगीं·

बंधु भीख प्रभु मोकों देउ इतनों यश तुम जग में लेउ

इतनी बात के सुनने से औ रुक्मिणी जी की ओर देखने से, श्रीकृष्ण चंद जी का सब कोप शांत हुआ; तब उन्होंने उसे जीव से तो न मारा पर सारथी को सैन करी, उसने झट इसकी पगड़ी उतार, टुंडियां चढ़ाय मूछ, डाढ़ी और सिर मूंड़ चोटी रख रथ के पीछे बांध लिया॥

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! रुक्म की तो श्री कृष्णजी ने यहां यह अवस्था की; और बलदेव जी वहां से सब असुरदल को मार भगाय कर, भाई के मिलने को ऐसे चले, कि जैसे स्वेत गज कमलदह में कमलों को तोड़ खाय, बिथराय· अकुलाय के भागता हो; निदान कितनी एक बेर में प्रभु के समीप जाय पहुंचे, औ रुक्म को बंधा देख श्री कृष्ण जी से अति झुंझलाय के बोले, कि तुमने यह क्या काम किया जो साले को पकड़ बांधा, तुम्हारी कुटेव नहीं जाती॥

बांध्यों याहि, करी बुध थोरी, यह तुम कृष्ण, सगाई तोरी·
औ यदुकुल को लीक लगाई, अब हमसों को करि है सगाई·

जिस समै यह युद्ध करने को आप के सन्मुख आया, तब तुमने इसे समझाय बुझाय के उलटा क्यों न फेर दिया· महाराज! ऐसे कह बलराम जी ने रुक्म को तो खोल समझाय, बुझाय, अति शिष्टाचार कर बिदा किया; फिर हाथ जोड़ अति बिनती कर बलराम सुखधाम, रुक्मिणी जी से कहने लगे, कि हे सुन्दरि! तुम्हारे भाई की जो यह दशा हुई, इस में कुछ हमारी चूक नहीं; यह उसके पूर्व जन्म के लिये कर्म का फल है; और क्षत्रियों का धर्म भी है कि भूमि धन त्रिया के काज, करते हैं युद्ध दल परस्पर साज; इस बात का तुम बिलग मत मानों, मेरा कहा सत्त्र ही जानों, हार जीत भी इसके साथ ही लगी है और यह संसार दुःख का समुद्र है, यहां आय सुख कहां, पर मनुष्य माया के वश हो दुःख सुख, भला बुरा, हार जीत, संयोग, बियोग, मन ही मन से मान लेते हैं पै इस में

हर्ष शोक जीव को नहीं होता; तुम अपने भाई के विरूप होने की चिन्ता मत करो क्योंकि ज्ञानी लोग जीव अमर, देह का नाश करते हैं; इस लेखे देह की पत जाने से कुछ जीव की नहीं गयी ॥

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि धर्मावतार ! जब बलराम जी ने ऐसे रुक्मिणी को समझाया तब

सुनि सुन्दरि मन समझ के, किये जेठ की लाज
सैन मांहि पियसों कहत, हांकहु रथ ब्रजराज
घूंघट ओट बदन को करै, मधुर बचन हरि सों उच्चरै
सन्मुख ठाढ़े हैं बलदाऊ, अहो कंत रथ बेग चलाऊ

इतना वचन रुक्मिणी जी के मुख से निकलते ही· इधर तो श्री कृष्णचन्दजी ने रथ द्वारका की ओर हांका, औ उधर रुक्म अपने लोगों में जाय, अति चिन्ता कर कहने लगा कि मैं कुंडलपुर से यह पैज करके आया था, कि अभी जाय कृष्ण बलराम को सब यदुवंशियों समेत मार, रुक्मिणी को ले जाऊंगा; सो मेरा प्रन पूरा न हुआ, औ उलटी अपनी पत खोयी; अब जीता न रहूंगा; इस देश औ गृहस्थाश्रम को छोड़, बैरागी हो, कहीं जाय मरूंगा ॥

जब रुक्म ने ऐसे कहा, तब उसके लोगों में से कोई बोला, महाराज ! तुम महावीर हो, औ बड़े प्रतापी तुम्हारे हाथ से जो वे जीते बच गये, सो विन के भले दिन थे· अपनी प्रारब्ध के बल से निकल गये, नहीं तो आपके सन्मुख हो कोई शत्रु कब जीता बच सकता है· तुम सज्ञान हो-ऐसी बात क्यों बिचारते हो; कभी हार होती है, कभी जीत, पर शूर वीरों का धर्म है जो साहस नहीं छोड़ते, भला, रिपु आज बच गया फिर मार लेंगे· महाराज ! जद यों विसनें रुक्म को समझाया; तद वह यह कहने लगा कि सुनों,

हार्यो उनसों औ पत गयी, मेरे मन अति लज्जा भयी
जन्म न हों कुंडलपुर जाऊं, बरन और ही गांव बसाऊं
यों कह, उन इक नगर बसायो, सुत, दारा धन तहां मंगायो
ताको धर्यो भोजकटु नाम, ऐसे रुक्म बसायो गाम

महाराज! उधर रुक्म तो राजा भीष्मक से बैर कर वहां रहा और इधर श्रीकृष्णचन्द औ बलदेव जी चले चले द्वारका के निकट आय पहुंचे ॥

उड़ी रेणु आकाश जो छायी, तबही पुर बासिन सुध पायी
आवत हरि जाने जबहि, राख्यो नगर बनाय
शोभा भइ तिहुं लोक की, कही कौन पै जाय

उस काल घर घर मंगलाचार हो रहे द्वार द्वार केले के खंभ गड़े, कांचन कलस सजल सपल्लव धरे; ध्वजा पताका फहराय रहीं; तोरण बंदनवारें बंधी हुईं; औ हर हाट, बाट चौहट्टे में चौमुखे दिये लिये युवतियें के यूथ के यूथ खड़े; औ राजा उग्रसेन भी सब यदुवंशियें समेत बाजे गाजे से अगाऊ जाय; रीति भांति कर, बलराम सुखधाम औ श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द को नगर में ले आये· उस समै के बनाव की छबि कुछ बरनी नहीं जाती; क्या स्त्री क्या पुरुष सब ही के मन में आनन्द छाय रहा था; प्रभु के सोहीं आय आय, सब भेंट दे भेंटते थे, औ नारियां अपने अपने द्वारों, बारों, चौबारों, कोठों पर से मंगली गीत गाय गाय आरती उतार उतार, फूल बरसावती थीं; औ श्रीकृष्णचन्द औ बलदेव जी यथा योग्य सब की मनुहार करते जाते थे; निदान इसी रीति से चले चले राजमंदिर में जा बिराजे, आगे कई एक दिवस पीछे एक दिवस श्रीकृष्णजी राजसभा में गये, जहां राजा उग्रसेन सूरसेन, बसुदेव आदि सब बड़े बड़े यदुवंशी बैठे थे; औ प्रणाम कर इन्होंने उनके आगे कहा, कि महाराज! युद्ध जीत जो कोई सुंदरी लाता है, वही राक्षस ब्याह कहाता है ॥

इतनी बात के सुनते ही सूरसेनजी ने पुरोहित बुलाय बिसे समझाय के कहा· कि तुम श्री कृष्ण के बिवाह का दिन ठहरा दो· उसने झट पत्रा खोल भला, महीना, दिन, बार, नक्षत्र देख, शुभ सूर्य्य चन्द्रमा बिचार ब्याह का दिन ठहराय दिया, तब राजा उग्रसेन ने अपने मंत्रियें को तो यह आज्ञा दी कि तुम ब्याह की सब सामा इकट्ठी करो; और आप बैठ पत्र लिख लिख पांडव कौरव आदि सब देश बिदेश के राजाओं को ब्राह्मणों के हाथ भिजवाये, महाराज! चिट्ठी पाते ही सब राजा प्रसन्न हो

हो उठ धाये, तिन्हों के साथ ब्राह्मण पण्डित भाट भिखारी भी हो लिये·

और ये समाचार पाय राजा भीष्मक ने भी बहुत वस्त्र, शस्त्र जड़ाऊ आभूषण और रथ, हाथी, घोड़े, दास, दासियों के डोले, एक ब्राह्मण को दे, कन्यादान का संकल्प मनही में ले अति बिनोति कर द्वारका को भेज दिया उधर से तो देश देश के नरेश आये; औ इधर से राजा भीष्मक का पठाया सब सामा लिये वह ब्राह्मण भी आया· उस समै की शोभा द्वारका पुरी की कुछ बरनी नहीं जाती· आगे व्याह का दिन आया तो सब रीति भांति कर वर कन्या को मढ़े के नीचे ले जा बैठाया और सब बड़े बड़े मुख्य यदुवंशी भी आय बैठे; उस बिरियां,

पण्डित तहां वेद उच्चरें, रुक्मिणी संग हरि भांवर फिरें·
ढोल दुंदुभी भेर बजावें, हरखहिं लोग पुहुप बरसावें·
हाथ गह्यो प्रभु भांवर पारी, बाम अंग रुक्मिणि बैठारी·
छोरी गांठ पटा फेर दियो, कुल देवी, को तब पूजियो·
छोरन कंकन हरि सुंदरी, खेलत दुधाभांती करी·
अति आनन्द रच्यो जगदीस, निरखि हरखि सब देहिं असीस·
हरि रुक्मिणि जोरी चिर जियो, जिनको चरित सुधा रस पियो·
दीनो दान विप्र जे आये, मागध बंदीजन पहिराये·
जे नृप देश देश के आये, दीन्ही बिदा सबै पहुंचाये·

॥ ५७ अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, कि महाराज! सत्राजित ने पहले तो श्रीकृष्णचन्द को मणि की चोरी लगायी, पीछे झूठ समझ लज्जित हो उस ने अपनी कन्या सत्यभामा हरि को व्याह दी, यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूछा कि कृपानिधान! सत्राजित कौन था, मणि उसने कहां पायी· और कैसे हरि को चोरी लगायी; फिर क्योंकर झूठ समझ कन्या व्याह दी यह तुम मुझे बुझा के कहो·

श्रीशुकदेवजी बोले, कि महाराज! सुनिये मैं सब समझाय के कहता हूं सत्राजित एक यादव था· तिसने बहुत दिन तक सूर्य्य की अति कठिन

तपस्या की; तब सूर्य्य देवता ने प्रसन्न हो उसे निकट बुलाय, मणि देकर कहा, कि स्यमंतक है इस मणि का नाम, इस में है सुख संपत का बिश्राम; सदा इसे मानियो, और बल तेज में मेरे समान जानियो, जो तू इसे, जप तप संयम, ब्रत कर ध्यावेगा, तो इस से मुह मांगा फल पावेगा; जिस देश, नगर, घर में यह जावेगा, तहां दु:ख दरिद्र काल कभी न आवेगा; सर्वदा सुकाल रहेगा· औ ऋद्धि सिद्धि भी रहेगी·

महाराज! ऐसे कह सूर्य्य देवता ने सत्राजित को बिदा किया; वह मणि ले अपने घर आया· आगे प्रात ही उठ वह प्रात: स्नान कर तर्पण से निश्चिन्त हो, नित्य चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य सहित मणि की पूजा किया करै, और मणि से जो आठ भार सोना निकले सो ले औ प्रसन्न रहै, एक दिन पूजा करते करते सत्राजित ने मणि की शोभा औ कांति देख निज मन में बिचारा कि यह मणि श्रीकृष्णचन्द्र को लेजा कर दिखलाइये तो भला·

यों बिचार मणि कंठ में बांध, सत्राजित्त यदुवंशियों की सभा को चला; मणि का प्रकाश दूर से देख सब यदुवंशी खड़े हो श्रीकृष्णजी से कहने लगे, कि महाराज! तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा किये सूर्य्य चला आता है, महाराज! जब सत्राजित को आता देख सब यदुवंशी यों कहने लगे, तब हरि बोले कि वह सूर्य्य नहीं सत्राजित यादव है, इसने सूर्य्य की तपस्या कर एक मणि पायी है, उसका प्रकाश सूर्य्य के समान है, वही मणि बांधे वह चला आता है·

महाराज! इतनी बात जब तक श्रीकृष्णजी कहैं, तब तक वह आय सभा में बैठा जहां यादव सारे पासे खेल रहे थे, मणि की कांति देख सब का मन मोहित हुआ, औ श्रीकृष्णचन्द भी देख रहे; तद सत्राजित कुछ मनही मन समझ उस समय बिदा हो अपने घर गया, आगे वह मणि गले में बांध नित आवे, एक दिन सब यदुवंशियों ने हरि से कहा, कि महाराज! सत्राजित से मणि ले राजा उग्रसेन को दीजे औ जग में यश लीजे यह मणि इसे नहीं फबती राजा के योग्य है·

इस बात के सुनते ही श्रीकृष्णजी ने हंसते हंसते सत्राजित से कहा कि यह मणि राजाजी को दो; औ संसार में यश बड़ाई लो· देने

का नाम सुनते ही वह प्रणाम कर चुप चाप वहां से उठ सोच बिचार करता, अपने भाई के पास जा बोला, कि आज श्रीकृष्णजी ने मुझ से मणि मांगी और मैंने नदी, इतनी बात जों सत्राजित के मुख से निकली तों क्रोधकर उसके भाई प्रसेन ने वह मणि ले अपने गले में डाली और शस्त्र लगाय, घोड़े पर चढ़ अहेर को निकला; महा बन में जाय, धनुष चढ़ाय, लगा सावर, चीतल, पाढ़े, रीछ औ मृग मारने, इस में एक हरिन जो उसके आगे से झपटा, तों इसने भी खिजलाय के तिसके पीछे घोड़ा दपटा औ चला चला अकेला कहां पहुंचा कि जहां युगानुयुग की एक बड़ी औंड़ी गुफा थी ॥

मृग औ घोड़े के पांव की आहट पाय, उस में से एक सिंह निकला वह इन तीनों को मार मणि ले फिर उस गुफा में बड़ गया· मणि के जाते ही उस महा अंधेरी गुफा में ऐसा प्रकाश हुआ कि पाताल तक चांदना गया, वहां जाम्बवान नाम एक रीछ, जो श्रीरामचन्द्र के साथ रामावतार में था; सो त्रेतायुग से तहां कुटुम्ब समेत रहा था, वह गुफा में उजाला देख उठ धाया, औ चला चला सिंह के पास आया· फिर वह सिंह को मार मणि ले अपनी स्त्री के निकट गया; तिसने मणि ले अपनी पुत्री के पालने में बांधी, वह तिसे देख नित हंस हंस खेला करे और सारे स्थान में आठ पहर प्रकाश रहे, इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! मणि यों गई, औ प्रसेन की यह गति भई, तब प्रसेन के साथ जो लोग गये थे, तिन्होंने आ सत्राजित से कहा, कि महाराज !

हमकों त्याग अकेलो धायो, जहां गयो तहां खोज न पायो·
कहत न बने ढूंढ़ि फिर आये, कहूं प्रसेन न बन में पाये·

इतनी बात के सुनते ही सत्राजित खाना पीना छोड़, अति उदास हो चिन्ता कर, मन ही मन कहनेलगा, कि यह काम श्रीकृष्ण का है, जो मेरे भाई को मणि के लिये मार· मणि ले घर में आय बैठा है, पहले मुझ से मांगता था; मैंने नदी, अब उसने यों ली· ऐसे वह मन ही मन कहे, औ रात दिन चिन्ता में रहे, एक दिन वह राति समै स्त्री के पास सेज पर तन छीन मन मलीन, मट्ठ मारे बैठा मन ही मन कुछ सोच

बिचार करता था, कि उस को नारी ने कहा ॥

कहा कंत मन सोचत रहो, मोसों भेद आपनो कहो·

सत्राजित बोला, कि स्त्री से कठिन बात का भेद कहना उचित नहीं, क्योंकि इसके पेट में बात नहीं रहती; जो घर में सुनती सो बाहर प्रकाश कर देती है; यह अज्ञान, इसे किसी बात का ज्ञान नहीं, भला हो के बुरा, इतनी बात के सुनते ही सत्राजित की स्त्री खिजला कर बोली, कि मैंने कब कोई बात घर में सुन बाहर कही है जो तुम कहते हो· क्या सब नारी समान होती हैं· यों सुनाय फिर उसने कहा, कि जब तक तुम अपने मन की बात मेरे आगे न कहोगे, तब तक मैं, अन्न पानी भी न खाऊंगी· यह बचन नारी से सुन सत्राजित बोला, कि झूठ सच की तो भगवान जाने, पर मेरे मन में एक बात आयी है सो मैं तेरे आगे कहता हूं; परंतु तू किसू के सोंहीं मत कहियो· उसकी स्त्री बोली, अच्छा मैं न कहूंगी ॥

सत्राजित कहने लगा, कि एक दिन श्री कृष्ण जी ने मुझ से मणि मांगी, औ मैंने न दी; इस से मेरे जी में आता है, कि उसी ने मेरे भाई को बन में जाय मारा, और मणि ली; यह उसी का काम है दूसरे की सामर्थ नहीं जो ऐसा काम करे ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले, कि महाराज ! बात के सुनते ही उसे रात भर नींद न आई, औ उसने सात पांच कर रैन गंवायी भोर होते ही उसने जा सखी सहेली औ दासी से कहा, कि श्रीकृष्ण जी ने प्रसेन को मारा, औ मणि ली, यह बात रात मैंने अपने कंत के मुख सुनी है पर तुम किसी के आगे मत कहियो· वहां से तो भला कह चुप चाप चली आयीं; पर अचरज कर एकांत बैठ आपस में चरचा करने लगीं, निदान एक दासी नें यह बात श्रीकृष्णचंद के रनवास में जा सुनायी; सुनते ही सब के जी में आया कि जो सत्राजित की स्त्री ने यह बात कही है तो झूठ न होगी· ऐसे समझ, उदास हो सब रनवास श्रीकृष्ण को बुरा कहने लगा- इस बीच किसी ने आय श्रीकृष्ण जी· से कहा, कि महाराज ! तुम्हें तो प्रसेन के मारने और मणि के लेने का कलंक लग चुका, तुम क्या बैठ रहे हो; कुछ उसका उपाय करो ॥

इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्ण जी पहले तो घबराये; पीछे कुछ सोच समझ वहां आये; जहां उग्रसेन वसुदेव औ बलराम सभा में बैठे थे, और बोले, कि महाराज ! हमें सब लोग यह कलंक लगाते हैं कि कृष्ण ने प्रसेन को मार मणि लेली, इससे आप की आज्ञा ले प्रसेन औ मणि के ढूंढने को जाता हूं, जिस से यह अपयश छूटे· यों कह श्रीकृष्ण जी वहां से आय, कितने एक यदुवंशियों औ प्रसेन के साथियों को साथ ले, बन को चले, कितनी एक दूर जाय देखें तो घोड़ों के चरण चिन्ह दृष्टि पड़े; तिन्हीं को देखते देखते वहां जाय पहुंचे, जहां सिंह ने तुरंग समेत प्रसेन को मार खाया था, दोनों की लोथ और सिंह के पाओं का चिन्ह देख सब ने जाना कि उसे सिंह ने मार खाया·

यह समझ, मणि न पाय, श्रीकृष्णचंद्रजी सब को साथ लिये लिये वहां गये जहां वह औंड़ी अंधेरी महा भयावनी गुफा थी; उसके द्वार पर देखते क्या हैं; कि एक सिंह मरा पड़ा है, पर मणि वहां भी नहीं, ऐसे अचरज देख तब श्रीकृष्णजी से कहने लगे, कि महाराज ! इस बन में ऐसा बली जंतु कहां से आया जो सिंह को मार मणि ले गुफा में पैठा, अब इस का कुछ उपाय नहीं जहां तक ढूंढ़ने का धर्म था तहां तक आप ने ढूंढ़ा तुम्हारा, कलंक छूटा, अब नाहर के सिर अपयश पड़ा ॥

श्रीकृष्णजी बोले चलो इस गुफा में धस के देखें, कि नाहर को मार मणि को कौन लेगया· वे सब बोले, कि महाराज ! जिस गुफा का मुख देखे हमें डर लगता है, तिस में धसेंगे कैसे, बरन हम तुम से भी बिनती कर कहते हैं, कि इस महा भयावनी गुफा में आप भी न जाइये, अब घर को पधारिये, हम सब मिल नगर में कहेंगे, कि प्रसेन को मार सिंह ने मणि ली, औ सिंह को मार मणि ले कोई जंतु एक अति डरावनी औंड़ी गुफा में गया, यह हम सब अपनी आंखों देख आये· श्रीकृष्णचन्द बोले मेरा मन मणि में लगा है, मैं अकेला गुफा में जाता हूं, दस दिन पीछे आऊंगा, तुम दस दिन तक यहां रहियो · इस में हमें बिलम्ब होय तो घर जाय संदेसा कहियो· महाराज ! इतनी बात कह हरि उस अंधेरी भयावनी गुफा में पैठे और चले चले वहां पहुंचे जहां जाम्बवान सोता था, और उसकी स्त्री अपनी लड़की को खड़ी पालने में झुलाती थी॥

वह प्रभु को देख, भय खाय पुकारी औ जाम्बवान जागा तो धाय हरि से आय लिपटा, औ मल्ल युद्ध करने लगा· जब उस का कोई दांव औ बल हरि पर न चला, तब,

जाम्बवान ने अष्टांग प्रणाम कर, खड़े हो, हाथ जोड़ अति दीनता से कहा कि हे कृपासिंधु, दीनबंधु, जो आप की आज्ञा पाऊं तो अपना मनोरथ कह सुनाऊं, प्रभु बोले, अच्छा कह, तब जाम्बवान ने कहा, कि हे पतित पावन दीनानाथ! मेरे चित्त में यों है कि यह कन्या जाम्बवती आप को ब्याहदूं औ जगत में यश बड़ाई लूं भगवान ने कहा, जो तेरी इच्छा में ऐसे आया तो हमें भी प्रमाण है· इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही, जाम्बवान ने पहले तो श्रीकृष्णचन्द की चंदन, अच्छत, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य ले, पूजा की; पीछे वेद की विधि से अपनी बेटी ब्याहदी औ उस के यौतुक में वह मणि भी धरदी·

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले, कि हे राजा! श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द तो मणि समेत जाम्बवती को ले यों गुफा से चले; और जो यादव गुफा के मुंह पर प्रसेन औ श्रीकृष्ण के साथी खड़े थे, अब तिनकी कथा सुनिये, गुफा के बाहर उन्हें जब अट्ठाईस दिन बीते, औ हरि न आये तब वे वहां से निरास हो, अनेक अनेक प्रकार की चिन्ता करते और रोते पीटते द्वारका में आये· ये समाचार पाय सब यदुवंशी निपट घबराये औ श्रीकृष्ण का नाम लेले महा शोक कर कर रोने पीटने लगे· और सारे रनवास में कुहराम पड़गया· निदान सब रानियां व्याकुल हो तन छीन, मन मलीन, राजमंदिर से निकल, रोतीं पीटतीं वहां आईं जहां नगर के बाहर एक कोस पर देवी का मंदिर था·

पूजा कर, गौर को मनाय; हाथ जोड़ सिर नाय कहने लगीं हे देवी! तुझे सुर, नर, मुनि सब ध्यावते हैं और तुझ से जो बर मांगते हैं सो पाते हैं; तू भूत भविष्य वर्त्तमान की सब बात जानती है; कह श्रीकृष्णचन्द आनन्द कन्द कब आवेंगे· महाराज! सब रानियां तो देवी के द्वार धरना दे यों मनाय रहीं; और उग्रसेन बसुदेव बलदेव आदि सब यादव महा चिन्ता में बैठे थे, कि इस बीच श्रीकृष्णचन्द अबिनाशी द्वारका बासी हंसते हंसते जाम्बवती को लिये आय राज सभा में खड़े हुए· प्रभु का चन्द मुख देख सब को आनन्द हुआ; औ यह शुभ समाचार पाय सब रानियां भी देवी

पूज घर आयीं; और मंगलाचार करनें लगीं· इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले, कि महाराज! श्रीकृष्णजी ने सभा में बैठते ही सत्राजित को बुला भेजा, औ वह मणि देकर कहा, कि यह मणि हमने न ली थी, तुमने झूठ मूठ हमें कलंक दिया था॥

यह मणि जामवंत ही लीन्ही, सुता समेत मोह तिन दीन्ही·
मणि ले तबहि चल्यौ सिरनाय, सत्राजित मन सोचतु जाय·
हरि अपराध कियो मैं भारी, अजनाने दीन्ही कुल गारी·
यादवपति कों कलंक लगायो, मणि के काजे बैर बढ़ायो·
अब यह दोष कटै सो कीजे, सतभामा मणि कृष्णहिं दीजे·

महाराज! ऐसे मन ही मन सोच बिचार करता, मणि लिये मन मारे, सत्राजित अपने घर गया, और उसने सब अपने जी का विचार स्त्री से कह सुनाया· तिस की स्त्री बोली, स्वामी! यह बात तुमने अच्छी बिचारी सत्यभामा श्रीकृष्ण को दीजे; और जगत में यश लीजे· इतनी बात के सुनते ही सत्राजित ने एक ब्राह्मण को बुलाय, शुभ लग्न मुहूर्त ठहराय रोली, अक्षत, रुपया, नारियल, एक थाली में धर, पुरोहित के हाथ श्रीकृष्णचंद के यहां टीका भेज दिया· श्रीकृष्णजी बड़ी धूम धाम से मोड़ बांध ब्याहन आये, तब सत्राजित ने सब रीति भांति कर वेद की विधि से कन्यादान किया· और बहुतसा धन दे यैातुक में तिस मणि को भी धर दिया॥

मणि के देखते ही श्रीकृष्ण जी ने उस में से निकाल बाहर की और कहा, कि यह मणि हमारे किसी काम की नहीं, क्योंकि तुमने सूर्य्य की तपस्या कर पायी· हमारे कुल में श्री भगवान छुड़ाय और देवता की दी वस्तु नहीं लेते, यह तुम अपने घर में रक्खो· महाराज! श्री-कृष्णचंद जी के मुख से इतनी बात निकलते ही सत्राजित मणि ले लजाय रहा, और श्रीकृष्ण जी सत्यभामा को ले बाजे गाजे से, निजधाम पधारे, और आनन्द से सत्यभामा समेत राजमंदिर में जा बिराजे॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा, कि कृपा निधान! श्री कृष्ण जी को कलंक क्यों लगा सो कृपाकर कहो श्री शुकदेव जी बोले, राजा!

चांद चौथ के देखियो, मोहन भादों मास·
तातें लग्यो कलंक यह, अति मन भयो उदास·

॥ ५८ अध्याय ॥

श्रीशुकदेव जी बोले, कि महाराज ! मणि के लिये जैसे शतधन्वा सत्राजित को मार, मणि ले, अक्रूर को दे, द्वारका छोड़ भागा, तैसे मैं कथा कहता हूं· तुम चित्त दे सुनो· एक समय हस्तिनापुर से आय किसी ने बलराम सुखधाम औ श्रीकृष्णचन्द आनन्दचन्द से यह संदेसा कहा, कि

पांडव न्यौते अंधसुत, घर के बीच सुवाय·
अर्द्ध रात चहुं ओर तें, दीन्ही आग लगाय·

इतनी बात के सुनते ही दोनों भाई अति दुःख पाय, घबराय, तत-काल दारुक सारथी से अपना रथ मंगवाय तिसपर चढ़ हस्तिनापुर को गये, और रथ से उतर कौरवों की सभा में जा खड़े रहे; वहां देखते क्या हैं कि सब तन छीन, मन मलीन, बैठे हैं, दुर्योधन मन ही मन कुछ सोचता है; भीष्म नैनों से जल मोचता है; धृतराष्ट्र बड़ा दुःख करता है, द्रोणा-चार्य्य की भी आंखों से पानी चलता है; बिदुरजी भी पछताय, गंधारी बैठी उसके पास आय, और भी जो कौरवों की स्त्रियां थीं सो भी पांडवों की सुध कर कर रो रहीं थीं, औ सारी सभा शोक मय हो रही थी, महा-राज ! वहां की यह दशा देख श्रीकृष्ण बलराम जी भी उनके पास जा बैठे, और उन्हों ने पांडवों का समाचार पूछा पर किसी ने कुछ भेद न कहा सब चुप हो रहे ।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज ! श्रीकृष्ण बलराम जी तो पांडवों के जलने के समाचार पाय हस्तिनापुर को गये; औ द्वारका में शतधन्वा नाम एक यादव था, कि जिसने पहले सत्यभामा मांगी थी, तिस के यहां अक्रूर औ कृतवर्मा मिल कर गये, औ दोनों नें उस से कहा कि हस्तिनापुर को गये श्रीकृष्ण बल-राम अब आय पड़ा है तेरा दांव, सत्राजित से तू अपना बैर ले; क्योंकि विसनें तेरी बड़ी चूक की, जो तेरी मांग श्रीकृष्ण को दी, औ तुझे गाली

चढ़ाई; अब यहां उसका कोई नहीं है सहायी, इतनी बात के सुनते ही शतधन्वा अति क्रोध कर उठा, औ रात्रि समै सत्राजित के घर जा ललकारा, निदान छल बल कर उसे मार वह मणि ले आया, तब शतधन्वा अकेला घर में बैठ, कुछ सोच बिचार मन ही मन पछताय कहने लगा·

मैं यह बैर कृष्ण सों कियौ, अक्रूर कौ मतौ सुन लियौ·
कृतवर्मा अक्रूर मिल, मतौ दियौ मोहि आय·
साधु कहै जो कपट को, तासों कहा बसाय·

महाराज! इधर शतधन्वा तो इस भांति पछतायं पछताय बार बार कहता था, कि होनहार से कुछ न बसाय कर्म की गति किसी से जानी नहीं जाय, और उधर सत्राजित को मरा निहार, उसकी नारी रो रो कंत कंत कर उठी पुकार, उसके रोने की धुनि सुनि सब कुटुम्ब के लोग क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक अनेक भांति की बातें कह कह रोने पीटने लगे, और सारे घर में कुहराम पड़गया, पिता का मरना सुन उसी समय आय, सत्यभामा जी सब को समझाय बुझाय, बाप की लोथ तेल में डलवाय अपना रथ मंगवाय तिस पर चढ़, श्रीकृष्णचंद आनन्दकन्द के पास चलीं और रात दिन के बीच जा पहुंचीं·

देखत ही उठ बोले हरी, घर है कुशल छेम सुन्दरी·
सतिभामा कहि जोरे हाथ, तुम बिन कुशल कहां यदुनाथ·
हमहिं बिपति शतधन्वा दई, मेरौ पिता हत्यौ मणि लई·
धरे तेल में श्वसुर तिहारे, करौ दूर सब शूल हमारे·

इतनी बात कह, सत्यभामा जो भी श्री कृष्ण बलदेव जी के सोंहीं खड़ी हो, हाय पिता हाय पिता कर धायमार रोने लगीं· तिन का रोना सुन श्रीकृष्ण बलरामजी ने भी पहले तो अति उदास हो रोकर लोक रीति दिखलायी; पीछे सत्यभामा को आसा भरोसा दे ढाढ़स बंधाय, वहां से साथ ले द्वारका में आये, श्रीशुकदेव जी बोले, कि महाराज! द्वारका में आते ही श्रीकृष्णचन्द ने सत्यभामा को महा दुखी देख प्रतिज्ञा कर कहा कि सुन्दरि! तुम अपने मन में धीरज धरो, और किसी बात की चिन्ता मत करो, जो होना था सो तो हुआ, पर अब मैं शतधन्वा को मार, तुम्हारे पिता का बैर लूंगा; तब मैं और काम करूंगा·

महाराज! राम कृष्ण के आते ही शतधन्वा अति भय खाय, घर छोड़ मनहीं मन यह कहता, कि पराये कहे, मैंने श्रीकृष्णजी से बैर किया अब शरण किसकी लूं, कृतवर्मा के पास आया, और हाथ जोड़ अति बिनती कर बोला, कि महाराज! आप के कहे से मैंने किया यह काम, अब मुझ पर कोपे हैं श्रीकृष्ण औ बलराम; इससे मैं भाग कर तुम्हारी शरण आया हूं, मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये शतधन्वा से यह बात सुन, कृतवर्मा बोला, कि सुनों हम से कुछ नहीं होसक्ता; जिसका बैर श्रीकृष्णचन्द से भया· सो नर सब ही से गया; तू क्या नहीं जानता था कि हैं अति बली मुरारि, तिन से बैर किये होगी हार; किसी के कहे से क्या हुआ; अपना बल बिचार काम क्यों न किया; संसार की रीति है कि बैर, ब्याह, औ प्रीति समान ही से कीजे! तू हमारा भरोसा मत रख, हम श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द के सेवक हैं· तिन से बैर करना हमें नहीं शोभता, जहां तेरे सींग समायं तहां जा ॥

महाराज! इतनी बात सुन शतधन्वा निपट उदास हो वहां से चल अक्रूर के पास आय; हाथ बांध, सिर नाय बिनती कर हा हा खाय कहने लगा कि प्रभु! तुम हो यादवपति ईश, तुम्हें मान के सब नवावते हैं सीस, साधु दयाल धरन तुम धीर, दुःख सह आप हरते हो पर पीर, बचन कहे की लाज है तुम्हें, अपनी शरण रक्खो तुम हमें, मैंने तुम्हारा ही कहा मान यह काम किया, अब तुम ही श्रीकृष्ण के हाथ से बचाओ ॥

इतनी बात के सुनते ही अक्रूर जी ने शतधन्वा से कहा कि तू बड़ा मूर्ख है जो हम से ऐसी बात कहता है, क्या तू नहीं जानता कि श्रीकृष्णचन्द सब के कर्त्ता दुःख हरता हैं, उन से बैर कर संसार में कब कोई रह सकता है, कहनेवाले का क्या बिगड़ा, अब तो तेरे सिर आन पड़ी कहा है, सुर नर मुनि की यही है रीति, अपने स्वार्थ के लिये करते हैं प्रीति; और जगत में बहुत भांति के लोग हैं, सो अनेक प्रकार की बातें अपने स्वार्थ की करते हैं; इससे मनुष्य को उचित है किसी के कहे पर न जाय जो काम करे तिस में पहले अपना भला बुरा बिचार ले, पीछे उस काज में पांव दे· तूने समझ बूझ कर किया है काम; अब तुझे कहीं जगत में रहने को नहीं है धाम, जिसने श्रीकृष्ण से बैर किया

वह फिर न जिया, जहां भाग के रहा तहां मारा गया; मुझे मरना नहीं जो तेरा पक्ष करूं, संसार में जी सब को प्यारा है॥

महाराज! अक्रूरजी ने जब शतधन्वा को यों रूखे बचन सुनाये, तब तो वह निरास हो, जीने की आस छोड़, मणि अक्रूर जी के पास रख रथ पर चढ़, नगर छोड़ भगा; और उसके पीछे रथ चढ़ श्रीकृष्ण बलराम जो भी उठ दौड़े औ चलते चलते इन्होंने उसे सौ योजन पर जाय लिया, इनके रथ की आहट पाय, शतधन्वा अति घबराय, रथ से उतर मिथिलापुरी में जा पड़ा॥

प्रभु ने उसे देख, क्रोध कर सुदर्शनचक्र को आज्ञा की, तू अभी शतधन्वा का सिर काट, प्रभु की आज्ञा पाते ही सुदर्शनचक्र ने उसका सिर जा काटा, तब श्रीकृष्णचन्द ने उसके पास जाय मणि ढूंढ़ी, पर न पायी फिर इन्होंने बलदेव जी से कहा, कि भाई! शतधन्वा को मारा औ मणि न पायी· बलराम जी बोले, कि भाई! वह मणि किसी बड़े पुरुष ने पायी, तिसने हमें लाय नहीं दिखाई, वह मणि किसी के पास छिपने की नहीं, तुम देखियो, निदान प्रगटेगी कहीं न कहीं॥

इतनी बात कह बलदेव जी ने श्रीकृष्णचन्द से कहा, कि भाई! अब तुम तो द्वारकापुरी को सिधारो और हम मणिके खोजने को जाते हैं, जहां पावेंगे तहां से ले आवेंगे॥

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द तो शतधन्वा को मार द्वारकापुरी पधारे और बलराम सुखधाम मणि के खोजने को सिधारे, देश देश नगर नगर गांव गांव में ढूंढ़ते ढूंढ़ते बलदेव जी चले चले अयोध्यापुरी जा पहुंचे, इनके पहुंचने के समाचार पाय अयोध्या का राजा दुरयोधन उठ धाय, आगे बढ़ भेट कर भेट दे प्रभु को बाजे गाजे से पाटम्बर के पांवड़े डालता निज मंदिर में ले आया, सिंहासन पर बिठाय, अनेक प्रकार से पूजा कर भोजन करवाय अति बिनती कर, सिर नाय, हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा हो बोला· कृपासिन्धु! आपका आना इधर कैसे हुआ सो कृपा कर कहिये॥

महाराज! बलदेव जी ने उसके मन की लगन देख, मगन हो; अपने आने का सब भेद कह सुनाया· इनकी बात सुन राजा दुरयोधन बोला

कि नाथ ! वह मणि कहीं किसी के पास न रहेगी, कभी न कभी आप से आप प्रकाश हो रहेगी, यों सुनाय फिर हाथ जोड़ कहने लगा कि दीनदयाल मेरे बड़े भाग जो आप का दर्शन मैंने घर बैठे पाया औ जन्म जन्म का पाप गंवाया; अब कृपा कर दास के मन की अभिलाषा पूरी कीजे, औ कुछ दिवस रह शिष्य कर गदा युद्ध सिखाय जग में यश लीजे· महाराज! दुर्योधन से इतनी बात सुन बलराम जी ने उसे शिष्य किया औ कुछ दिन वहां रह सब गदायुद्ध की विद्या सिखायी; पर मणि वहां भी सारे नगर में खोजी औ न पायी, आगे श्रीकृष्ण जी के पहुंचने के उपरांत कितने एक दिन पीछे बलराम भी द्वारका नगरी में आये, तो श्रीकृष्णचन्द जी ने सब यादव साथ ले, सत्राजित को तेल से निकाल अग्नि· संस्कार किया, औ अपने हाथों दाह दिया ॥

जब श्रीकृष्ण जी क्रिया कर्म से निश्चिन्त हुए; तब अक्रूर औ कृतवर्मा कुछ आपस में सोच बिचार कर, श्रीकृष्ण जी के पास आय उन्हें एकान्त लेजाय, मणि दिखलाय कर बोले, कि महाराज ! यादव सब बहिर्मुख भये, औ माया में मोह गये; तुम्हारा स्मर्ण ध्यान छोड़ धनांध हो रहे हैं, जो ये सब कुछ कष्ट पावें तो प्रभु की सेवा में आवें, इस लिये हम नगर छोड़ मणि ले भागते हैं, यदि हम इनसे आपका भजन स्मर्ण करावेंगे तभी द्वारकापुरी में आवेंगे· इतनी बात कह अक्रूर औ कृतवर्मा सब कुटुम्ब समेत आधी रात को श्रीकृष्णचन्द के भेद में द्वारकापुरी से भागे ऐसे कि किसी ने न जाना कि किधर गये, भोर होते ही सारे नगर में यह चरचा फैली कि न जानिये रात की रात में अक्रूर औ कृतवर्मा कुटुम्ब समेत किधर गये, औ क्या हुए ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले, कि महाराज ! इधर द्वारकापुरी में तो नित घर घर यह चरचा होने लगी औ उधर अक्रूरजी प्रथम प्रयाग में जाय, मुंडन करवाय, त्रिवेणी न्हाय, बहुत सा दान पुण्य कर, तहां हरिपैड़ी बंधवाय, गया को गये, वहां भी फलगू नदी के तीर बैठ, शास्त्र की रीति से श्राद्ध किया, और गयालियों को जिमाय बहुत ही दान दिया पुनि गदाधर के दर्शन कर, तहां से चल काशीपुरी में आये; इनके आने का समाचार पाय, इधर उधर के राजा सब आय आय, भेट कर भेट धरने लगे, और ये वहां यज्ञ, दान, तप, व्रत कर रहने लगे ॥

इस में कितने एक दिन बीते, श्री मुरारी भक्त हितकारी ने अक्रूरजी का बुलाना जी में ठान, बलराम जी से आय के कहा, कि भाई! अब प्रजा को कुछ दु:ख दीजे, औ अक्रूरजी को बुलवा लीजे, बलदेवजी बोले, महाराज! जो आप की इच्छा में आवे सो कीजे, और साधुओं को सुख दीजे, इतनी बात बलराम जी के मुख से निकलते ही श्रीकृष्णचन्द जी ने ऐसा किया, कि द्वारकापुरी में घर घर तप, तिजारी, मिरगी, दयी, दाद, खाज, आधासीसी, कोढ़, महा कोढ़, जलंधर, भगन्दर, कठन्दर, अतीसार, आंव, मड़ोड़ा, खांसी, शूल, अर्द्धांग, सीतांग, झोला, सन्निपात आदि व्याधि फैल गयीं॥

और चार महीने वर्षा भी न हुई, तिससे सारे नगर के नदी नाले सरोवर सूख गये; तृण अन्न भी कुछ न उपजा, नभचर तुलचर, थलचर, जीव जंतु पक्षी औ ढोर लगे व्याकुल हो सूख सूख मरने, औ पुरवासी मारे भूखों के चाहि चाहि करने; निदान सब नगर निवासी महा व्याकुल हो निपट घबराय, श्रीकृष्णचंद दुखनिकन्द के पास आये, और अति गिड़-गिड़ाय अधिक आधीनता कर, हाथ जोड़ सिर नाय कहने लगे॥

हम तो शरण तिहारे रहें, कष्ट महा अब क्योंकर सहें·
मेघ न बरष्यो पीड़ा भई, कहा बिधाता ने यह ठई·

इतना कह फिर कहने लगे, कि हे द्वारकानाथ, दीनदयाल, हमारे तो करता दुख हरता तुम हो, तुम्हें छोड़ कहां जांय औ किस से कहें, यह उपाधि बैठे बिठाये में कहां से आयी, औ क्यों हुई, सो कृपा कर कहिये॥

श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्ण-चन्द जी ने उनसे कहा कि सुनों जिस पुर से साधु जन निकल जाता है तहां आप से आप काल दरिद्र दु:ख आता है, जब से अक्रूरजी इस नगर से गये हैं; तभी से यहां यह गति हुई है, जहां रहते हैं साधु सत्यवादी औ हरिदास, तहां होता है अशुभ अकाल विपत्ति का नाश; इन्द्र रखता है हरि भक्तों से स्नेह, इसी लिये उस नगर में भली भांति बरसता है मेह॥

इतनी बात के सुनते ही सब यादव बोल उठे, कि महाराज! आप ने सच कहा, यह बात हमारे भी जी में आई, क्योंकि अक्रूर के पिता

का श्वफल्क नाम है, वह भी बड़ा साधु सत्यवादी धर्मात्मा है, जहां वह रहता है तहां कभी नहीं होता है दुःख दरिद्र औ अकाल, सदा समय पर बरसता है मेह, तिस से होता है सुकाल; औ सुनिये, कि एक समय काशीपुरी में पड़ा दुर्भिक्ष पड़ा, तब काशी का राजा श्वफल्क को बुलाय ले गया· महाराज ! श्वफल्क के जाते ही उस देश में मेह मन मानता बरसा समा हुआ, औ सब का दुःख गया; पुनि काशीपुरी के राजा ने अपनी लड़की श्वफल्क को व्याहदी, ये आनन्द से वहां रहने लगे, तिस राजकन्या का नाम गांदिनी था, तिसी का पुत्र अक्रूर है ॥

इतना कह सब यादव बोले, कि महाराज ! हम तो यह बात आगे से जानते थे· अब जो आप आज्ञा कीजे सो करें श्रीकृष्णचंद बोले, कि अब तुम अति आदर मान कर, अक्रूर जी को जहां पाओ तहां से ले आओ· यह बचन प्रभु के मुख से निकलते ही सब यादव मिल अक्रूर को ढूंढ़ने निकले, औ चले चले बाराणसीपुरी में पहुंचे; अक्रूर जी से भेट कर, भेट दे, हाथ जोड़ सिर नाय सन्मुख खड़े हो बोले,

चलो नाथ ! बोलत बल श्याम, तुम बिन पुर बासी हैं बिराम·
जितहीं तुम तितही सुख बास, तुम बिन कष्ट दरिद्र निवास·
यद्यपि पुर में श्री गोपाल, तऊ कष्ट दे पर्‌यो अकाल·
साधुन के वश श्रीपति रहैं, तिनतें सब सुख संपति लहैं·

महाराज ! इतनी बात के सुनतेही अक्रूरजी वहां से अति आतुर हो कुटुम्ब समेत कृतवर्मा को साथ ले सब यदुबंशियों को लिये, बाजे गाजे से चल खड़े हुए, और कितने एक दिनों के बीच आ सब समेत द्वारकापुरी में पहुंचे, इनके आने का समाचार पाय श्रीकृष्णजी औ बलराम आगे बढ़ आये, इन्हें अति मान सन्मान से नगर में लिवाय ले आये, हे राजा ! अक्रूरजी के पुरी में प्रबेश करते ही मेंह बरसा, और समा हुआ, सारे नगर का दुःख दरिद्र बह गया; अक्रूर की महिमा हुई, सब द्वारकाबासी आनन्द मंगल से रहने लगे ॥

आगे एक दिन श्री कृष्णचंद आनन्दकन्द ने अक्रूरजी को निकट बुलाय एकांत ले जाय के कहा, कि तुमने सत्राजित की मणि ले क्या की ? वह बोला महाराज ! मेरे पास है· फिर प्रभु ने कहा, कि जिसकी वस्तु

तिसे दीजे, और वह न हो तो तिसके पुत्र को सौंपिये, पुत्र न हो तो उसकी स्त्री को दीजिये, स्त्री न होय तो उसके भाई को दीजे, भाई न होय तो उसके कुटुंब को सौंपिये; कुटुंब भी न होय तो उसके गुरु पुत्र को दीजे, गुरुपुत्र न होय तो ब्राह्मण को दीजे, पर किसी का द्रव्य आप न लीजिये, यह न्याय है, इस से अब तुम्हें उचित है कि सत्राजित की मणि उसके नाती को दो, औ जगत में बड़ाई लो ॥

महाराज! श्रीकृष्णचंद के मुख से इतनी बात के निकलतेही अक्रूरजी ने मणि लाय, प्रभु के आगे धर हाथ जोड़, अति बिनती कर कहा, कि दीनानाथ! यह मणि आप लीजे, औ मेरा अपराध दूर कीजे, क्योंकि जो इस मणि से सोना निकला, सो ले मैंने तीर्थ यात्रा में उठाया है प्रभु बोले अच्छा किया, यों कह मणि ले हरि ने सत्यभामा को जाय दी औ उसके चित्त की सब चिन्ता दूर की, इति ॥

॥ ५६ अध्याय ॥

श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! एक दिन श्रीकृष्णचन्द जगबंधु आनन्दकन्द जी ने यह बिचार किया, कि अब चलकर पांडवों को देखिये जो आग से बच जीते जागते हैं· इतनी बात कह हरि कितने एक यदु-वंशियों को साथ ले द्वारकापुरी से चल हस्तिनापुर आये; इनके आने का समाचार पाय, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, पांचों भाई अति हर्षित हो उठ धाये, औ नगर के बाहर आय मिल बड़ी आव भगत कर लिवाय घर ले आये ॥

घर में जाते ही कुंती औ द्रौपदी ने पहलें तो सात सुहागनों को बुलाय, मोतियों का चौक पुरवाय तिस पर कंचन की चौकी बिछवाय, उस पै श्रीकृष्णचन्द को बिठाय, मंगलाचार करवाय अपने हाथों आरती उतारी· पीछे प्रभु के पांव धुलवाय रसोई में लेजाय षट्रस भोजन करवाया महाराज! जब श्रीकृष्णचंद भोजन कर पान खानें लगे तब,

कुंती ढिंग बैठी कहै बात, पिता बंधु पूछत कुशलात·
नीके सूरसेन बसुदेव, बंधु भतीजे अरु बलदेव·

तिन में प्राण हमारो रहे, तुम बिन कौन कष्ट दुख दहे·
जब जब बिपत परी अति भारी, तब तुम रक्षा करी हमारी·
अहो! कृष्ण तुम पर दुख हरना, पांचों बंधु तुम्हारी सरना·
ज्यों मृगनी वृक झुंड के चासा, त्यों ये अन्धसुतन के बासा·

महाराज! जब कुंती यों कह चुकी

तबहिं युधिष्ठिर जोरे हाथ, तुम हो प्रभु यादवपति नाथ·
हमकों घर ही दरसन दीनें, ऐसो कहा पुण्य हम कीनें·
चार मास रहके दुख देहो, वर्षा ऋतु बीते घर जेहो·

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! इस बात के सुनते ही भक्त हितकारी श्री बिहारी सब को आसा भरोसा दे वहां रहे और दिन दिन आनन्द प्रेम बढ़ाने लगे, एक दिन राजा युधिष्ठिर के साथ श्रीकृष्णचन्द, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव को लिये, धनुष बाण कर गहे, रथ पर चढ़ बन में अहेर को गये; वहां जाय रथ से उतर, फेंट बांध बांहें चढ़ाय, शर साध, जङ्गल जङ्गल झाड़ी झाड़ी लगे सिंह बाघ, गैंड़े, अरने, सावर सूअर, हिरन, रोझ मार मार, राजा युधिष्ठिर के सन्मुख लाय, लाय धरने, और राजा युधिष्ठिर हंस हंस, रीझ रीझ, ले ले, जो जिस का भक्ष्य था तिसे देने लगे औ हिरन, रोझ, सावर रसोई में भेजने॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, महाराज! कई बरस पीछे श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द के पुत्र प्रद्युम्न जी के पुत्र हुआ; उस काल श्रीकृष्णजी ने ज्योतिषियों को बुलाय, सब कुटुम्ब के लोगों को बैठाय मंगलाचार करवाय, शास्त्र की रीति से नामकरण किया; ज्योतिषियों ने पत्रा देख, वरष, मास, पक्ष, दिन, तिथि, घड़ी, लग्न, नक्षत्र ठहराय, उस लड़के का नाम अनिरुद्ध रक्खा; उस काल॥

फूले अंग न समायं, दान दक्षिणा द्विजन कों·
देत न कृष्ण अघायं, प्रद्युम्न के बेटा भयो·

महाराज! नाती के होने का समाचार पाय पहले तो रुक्म ने बहन बहनोई को अति हित कर यह पत्री में लिख भेजा, कि तुम्हारे पोते से हमारी पोती का ब्याह होय तो बड़ा आनन्द है, और पीछे एक ब्राह्मण

को बुलाय, रोली अक्षत रुपया नारियल दे, उसे समझाय के कहा, कि तुम द्वारकापुरी में जाय, हमारी ओर से अति बिनती कर, श्रीकृष्णाजी का पोच अनिरुद्ध जो हमारा दोहता है तिसे टीका देआओ, बात के सुनते ही ब्राह्मण टीका और लग्न साथ हो ले चला चला श्रीकृष्णाचन्द के पास द्वारकापुरी में गया, विसे देख प्रभु ने अति मान सन्मान कर पूछा कि कहो देवता! आप का आना कहां से हुआ? ब्राह्मण बोला, महाराज! मैं राजा भीष्मक के पुत्र रुक्म का पठाया उनकी पोती और आप के पोत्र के संबंध करने को टीका औ लग्न ले आया हूं॥

इस बात के सुनते ही श्रीकृष्णजी ने दस भाइयों को बुलाय, टीका और लग्न ले, विस ब्राह्मण को बहुत कुछ दे, बिदा किया; और आप बलराम जी के निकट जाय, चलने का बिचार करने लगे· निदान वे दोनों भाई वहां से उठ राजा उग्रसेन के पास जाय, सब समाचार सुनाय उन से बिदा हो, बाहर आय, बरात की सब सामा मंगवाय मंगवाय इकट्ठी करवाने लगे; कई एक दिन में जब सब समान उपस्थित हो चुका, तब बड़ी धूम धाम से प्रभु बरात ले द्वारका से भोजकटु नगर को चले॥

उस काल एक झमझमाते रथ पर तो श्रीरुक्मिणी जी पुत्र पोत्र को लिये बैठी जाती थीं औ एक रथ पर श्रीकृष्णचन्द औ बलराम बैठे जाते थे; निदान कितने एक दिनों में सब समेत प्रभु वहां पहुंचे; महाराज! बरात के पहुंचते हो रुक्म कलिंगादि सब देश देश के राजाओं को साथ ले, नगर के बाहर जाय, अगौनी कर, सब को बागे पहराय, अति आदर मान कर जनवासे में लिवाइ आया; आगे सब को खिलाय पिलाय माढ़े के नीचे लिवाय ले गया, औ उसने वेद की बिधि से कन्यादान किया, विस के यौतुक में जो दान दिया उसको मैं कहां तक कहूं, वह अकथ्य है॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले, महाराज! ब्याह हो चुकते ही राजा भीष्मक ने जनवासे में जाय, हाथ जोड़ अति बिनती कर श्रीकृष्णजी से चुपचुपाते कहा, महाराज! बिवाह हो चुका औ रस रहा, अब आप शीघ्र चलने का बिचार कीजे, क्योंकि,

भूप सगे जे रुक्म बुलाये, ते सब दुष्ट उपाधी आये·
मत काहू सों उपजे रारि, याही तें हों कहत मुरारि·

इतनी बात कह जों राजा भीष्मक गये तोंहीं श्रीरुक्मिणी जी के निकट रुक्म आया ·

कहत रुक्मिणी टेर कर, किमि घर पहुंचें जाय·
बैरी भूपति पाहुने, जुरे तिहारे आय·
जो तुम भैया चाहो भलो, हमहिं बेग पहुंचावन चलो·

नहीं तो रस में अनरस होता दीसे है, यह बचन सुन रुक्म बोला, कि बहन! तुम किसी बात की चिन्ता मत करो मैं पहले जो राजा देश देश के पाहुने आये हैं तिन्हें बिदा कर आऊं, पीछे जो तुम कहोगी सो मैं करूंगा· इतना कह रुक्म वहां से उठ जो राजा पाहुने आये थे उनके पास गया; वे सब मिलके कहने लगे, कि रुक्म! तुमने कृष्ण बलदेव को इतना धन द्रव्य दिया औ तिन्होंने मारे अभिमान के कुछ भला न माना, एक तो हमें इस बात का पछतावा है, औ दूसरे उस बात की कसक हमारे मन से नहीं जाती, कि जो बलराम ने तुम्हें अभरम किया था॥

महाराज! इस बात के सुनते ही रुक्म को क्रोध हुआ·तब राजा कलिंग बोला, कि एक बात मेरे जी में आई है, कहो तो कहूं, रुक्म ने कहा कहो फिर उसने कहा कि हमें श्रीकृष्ण से कुछ काम नहीं; पर बलराम को बुलादो तो हम उस से चौपड़ खेल सब धन जीत लें· औ जैसा उसे अभिमान है तैसा यहां से रीते हाथ बिदा करें, जों कलिंग ने यह बात कही, तों हीं रुक्म वहां से उठ कुछ सोच बिचार करता बलरामजी के निकट जा बोला, कि महाराज! आप को सब राजाओं ने प्रणाम कर बुलाया है, चौपड़ खेलने को॥

सुनि बलभद्र तबहि तहं आये, भूपति उठ के सीस निवाये·

आगे सब राजा बलराम जी का शिष्टाचार कर बोले, कि आप को चौपड़ खेलने का बड़ा अभ्यास है, इस लिये हम आप के साथ खेला चाहते हैं, इतना कह उन्होंने चौपड़ मंगवाय बिछाई, औ रुक्म से औ बलरामजी से होने लगी, पहले रुक्म दस बेर जीता, तो बलदेवजी से कहने लगा कि धन तो सब जीता, अब काहे से खेलोगे, इस में राजा कलिंग बड़ी बात कह हंसा; यह चरित्र देख बलदेवजी नीचा सिर कर सोच बिचार करने लगे तब रुक्म ने दस करोड़ रुपये एक बार लगाये,

सो बलरामजी ने जों जीत के उठाये, तों सब धांधल कर बोले, कि यह रुक्म का पांसा पड़ा, तुम क्यें रुपये समेटते हो ? ॥

सुनि बलराम फेर सब दीन्हें, अर्ब लगायो पांसे लीन्हें-

फिर हलधर जीते श्रो रुक्म हारा, उस समय भी रोंगटी कर कर सब राजाश्रों ने रुक्म को जिताया, श्रो यों कह सुनाया ॥

जुश्रा खेल पांसे की सार, यह तुम जानों कहा गंवार·
जुश्रा युद्ध गति भूपति जाने, ग्वाल गोप गेयन पहचाने·

इस बात के सुनते ही बलदेवजी का क्रोध यों बढ़ा, कि जैसे पून्यो को समुद्र की तरंग बढ़े, निदान जों तों कर बलरामजी ने क्रोध को रोक; मन को समझाय, फिर सात अर्ब रुपये लगाये, श्रो चोपड़ खेलने लगे; फिर भी बलदेवजी जीते, श्रो सबों ने कपट कर रुक्म ही को जीता कहा इस अनीति का बचन उचारा; महाराज! तब तो बलदेवजी महा क्रोध में आय बोले ॥

करी सगाई बैर न छांड़्यो, हमसों फेर कलह तुम मांड्यो·
मारों तोहि अरे अन्याई, भलो बुरो मानहु भैाजाई·
अब काहू की कान न करिहों, आज प्राण कपटी के हरिहों·

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीछित से कहा, कि महाराज! निदान बलरामजी ने सब के देखते रुक्म को मार डाला, श्रो कलिंग को पछाड़ मारे घूसों के उसके दांत उखाड़ डाले, श्रो कहा, कि तू भी मुंह पसार के हसा था, आगे सब राजाश्रों को मार भगाय बलराम जी ने जनवासे में श्रीकृष्णचन्द जी के पास आय वहां का सब व्यौरा कह सुनाया। बात के सुनते ही हरि ने सब समेत वहां से प्रस्थान किया, श्रो चले चले आनन्द मंगल से द्वारका में आन पहुंचे इनके आते ही सारे नगर में सुख छाय गया; घर घर मंगलाचार होने लगा; श्रीकृष्णजी श्रो बलदेवजी ने उग्रसेन राजा के सन्मुख जाय हाथ जोड़ कहा महाराज आप के पुण्य प्रताप से अनिरुद्ध को व्याह लाये, श्रो महा दुष्ट रुक्म को मार आये· इति

॥ ६० अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, कि महाराज! जब रात व्यतीत भई; चिड़ियां चुहचुहायीं; अंबर में अरुणाई छाई; चकोर को वियोग हुश्रा श्रोर चकवा

चकवियों को संयोग; कमल बिकसे; कमोदनी कुंभलाई; चंद्रमा छबि छीन भया; औ सूर्य्य का तेज बढ़ा, सब लोग जागे, औ अपना अपना गृह काज करने लगे ॥

श्रीकृष्णचंदजी देह शुद्ध कर, हाथ मुंह धाय, स्नान कर, जप ध्यान पूजा तर्पण से निश्चिन्त हो, ब्राह्मणों को नाना प्रकार के दान दे, नित्य कर्म से सुचित्त हो, बाल भोग पाय, पान लौंग इलायची जायपत्री जायफल के साथ खाय, सुथरे वस्त्र आभूषण मंगाय पहन, शस्त्र लगाय राजा उग्रसेन के पास गये; पुनि जुहार कर यदुवंशियों की सभा के बीच आय रत्नसिंहासन पर बिराजे ॥

महाराज ! उसी समय एक ब्राह्मण ने जाय द्वारपालों से कहा, कि तुम श्रीकृष्णचंद जी से जाकर कहो, कि एक ब्राह्मण आप के दर्शन की अभिलाषा किये द्वारपर खड़ा है, जो प्रभु की आज्ञा पावे तो भीतर आवे, ब्राह्मण की बात सुन द्वारपाल ने भगवान से जा कहा, कि महाराज ! एक ब्राह्मण आप के दर्शन की अभिलाषा किये पैार पर खड़ा है, जो आज्ञा पावे तो आवे· हरि बोले, अभी लाव, प्रभु के मुख से बात निकलते ही, द्वारपाल हाथों हाथ ब्राह्मण के सन्मुख लेगये, विप्र के देखते ही श्रीकृष्णचंद सिंहासन से उतर दंडवत कर, आगू बढ़, हाथ पकड़ उसे मंदिर में लेगये, औ रत्न सिंहासन पर अपने पास बिठाय पूछने लगे, कि कहो देवता ! आप का आना कहां से हुआ, औ किस कार्य्य के हेतु पधारे ? ब्राह्मण बोला कृपासंधि, दीनबंधु ! मैं मगध देश से आया हूं, औ बीस सहस्र राजाओं का संदेसा लाया हूं· प्रभु बोले, सो क्या ? ब्राह्मण ने कहा, महाराज ! जिन बीस सहस्र राजाओं को जरासंध ने बल कर पकड़ हथकड़ी दे रक्खा है, तिन्हों ने मेरे हाथ आपको अति बिनती कर यह संदेसा कहला भेजा है, दीनानाथ ! तुम्हारी सदा सर्वदा यह रीति है कि जब जब असुर तुम्हारे भक्तों को सताते हैं, तब तब तुम अवतार ले अपने भक्तों की रक्षा करते हो, नाथ दया कर अब हमें इस महा दुष्ट के हाथ से छुडाइये, हम महा कष्ट में हैं, तुम बिन औ किसी की सामर्थ नहीं जो इस महा बिपत्त से निकाले, औ हमारा उद्धार करे ॥

महाराज ! इतनी बात के सुनते ही प्रभु दयाल हो बोले, कि हे देवता ! तुम अब चिन्ता मत करो बिनकी चिन्ता मुझे है, इतनी बात

के सुनते ही ब्राह्मण संतोष कर श्रीकृष्णचंद को असीस देने लगा· इस बीच नारदजी आ उपस्थित हुए प्रणाम कर श्रीकृष्णचंद ने उन से पूछा, नारदजी ! तुम सब ठौर जाते आते हो, कहो हमारे भाई युधिष्ठिर आदि पांचों पांडव इन दिनों कैसे हैं, औ क्या करते हैं, बहुत दिन से हमने उनके कुछ समाचार नहीं पाये, इससे हमारा चित्त उन्हीं में लगा है, नारदजी बोले, कि महाराज ! मैं तिन्हीं के पास से आता हूं, हैं तो कुशल क्षेम से, पर इन दिनों राजसूय यज्ञ करने के लिये निपट भावित हो रहे हैं, औ घड़ी घड़ी यह कहते हैं, कि बिना श्रीकृष्णचंद की सहायता के हमारा यज्ञ पूरा न होगा, इस से महाराज ! मेरा कहा मानियें तो,

पहिले उनको यज्ञ संवारो, पाछे अनत कहूं पग धारो,

महाराज ! इतनी बात नारदजी के मुख से सुनते ही प्रभु ने ऊधो जी को बुलाय के कहा,

ऊधो तुम हो सखा हमारे, मन आंखनतें कबहु न न्यारे,
दुहूं ओर की भारी भीर, पहले कहां चलें कहु बीर,
उत राजा संकट में भारी, दुख पावत किये आस हमारी,
इत पंडुन मिल यज्ञ रचायो, ऐसे कह प्रभु बचन सुनायो, इति

॥ ६१ अध्याय ॥

श्री शुकदेवजी बोले, कि महाराज ! पहले तो श्रीकृष्णचन्दजीने उस ब्राह्मण को इतना कह बिदा किया, जो राजाओं का संदेसा लाया था कि देवता ! तुम हमारी ओर से सब राजाओं से जाय कहो, कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, हम बेग आय तुम्हें छुडाते हैं, महाराज ! यह बात कह श्रीकृष्णचन्द ब्राह्मण को बिदा कर, ऊधोजी को साथ ले राजा उग्रसेन सूरसेन की सभा में गये, और इन्होंने सब समाचार उनके आगे कहे; वे सुन चुप हो रहे, इस में ऊधोजी बोले, कि महाराज ये दोनों काज कीजे; पहले राजाओं को जरासंध से छुड़ा लीजे, पीछे चल कर यज्ञ संवारिये, क्योंकि राजसूय यज्ञ का काम बिन राजा औ कोई नहीं कर सक्ता, औ वहां बीस सहस्र नृप इकट्ठे हैं, तिन्हें छुड़ाओगे तो वे सब गुण मान यज्ञ का काज बिन बुलाये जाकर करेंगे, महाराज !

औ कोई दशों दिशा जीत आवेगा, तोभी इतने राजा इकट्ठे न पावेगा, इस से अब उत्तम यही है कि हस्तिनापुर को चलिये, पांडवों से मिल मता कर जो काम करना हो सो करिये ॥

महाराज ! इतना कह पुनि ऊधोजी बोले कि, महाराज ! राजा जरासंध बड़ा दाता औ गो ब्राह्मण का मानने और पूजने वाला है, जो कोई तिस से जाकर जो मांगता है सो पाता है; याचक उसके यहां से बिमुख नहीं आता; वह झूठ नहीं बोलता, जिससे बचन बंध होता है; तिस से निबाहता है; दस सहस्र हाथी का बल रखता है, उसके बल के समान भीमसेन का बल है, नाथ ! जो तुम वहां चलो तो भीमसेन को भी अपने साथ ले चलो, मेरी बुद्धि में आता है कि उसकी मीच भीमसेन के हाथ है ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि राजा ! जब ऊधोजी ने यह बातें कहीं, तभी श्रीकृष्णचंदजी ने राजा उग्रसेन सूरसेन से बिदा हो सब यदुवंशियों से कहा, कि हमारा कटक साजो हम हस्तिनापुर को चलेंगे, बात के सुनते ही सब यदुवंशी सेना साज लेआये औ प्रभु भी आठों पटरानियों समेत कटक के साथ हो लिये, महाराज ! जिस काल श्रीकृष्णचन्द कुटुंब सहित सब सेना ले धौंसा दे द्वारकापुरी से हस्तिनापुर को चले, उस समय की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती; आगे हाथियों का कोट; बायें दाहने रथ घोड़ों की ओट; बीच में रनवास, औ पीछे सब सेना साथ लिये, सब की रक्षा किये, श्रीकृष्णचन्द जी चले जाते थे; जहां डेरा होता था, तहां कई योजन के बीच एक सुंदर सुहावना नगर बन जाता था, देशदेश के नरेश भय खाय आय आय भेट कर भेट धरते थे, औ प्रभु तिन्हें भयातुर देख तिनका सब भांति समाधान करते थे ॥

निदान इसी धूमधाम से चले चले हरि सब समेत हस्तिनापुर के निकट पहुंचे; इस में किसी ने राजा युधिष्ठिर से जाय कहा, कि महाराज ! कोई नृपति अति सेना ले बड़ी भीड़भाड़ से आप के देश पर चढ़ आया है, आप बेग उसे देखिये, नहीं तो उसे यहां पहुंचा जानिये, महाराज ! इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने अति भय खाय, अपने नकुल, सहदेव दोनों छोटे भाइयों को यह कह, प्रभु के सन्मुख भेजा, कि तुम देख

आओ, कि कौन राजा चढ़ा आता है, राजा की आज्ञा पाते ही·

सहदेव नकुल देखि फिर आये, राजा कों ये बचन सुनाये·
प्राणनाथ आये हैं हरी, सुनि राजा चिन्ता परिहरी·

आगे अति आनन्द कर राजा युधिष्ठिर ने भीम अर्जुन को बुलाय के कहा कि भाई! तुम चारों भाई आगू जाय श्रीकृष्णचन्द आनन्दकंद को ले आओ, महाराज! राजा की आज्ञा पाय, औ प्रभु का आना सुने वे चारों भाई अति प्रसन्न हो, भेट पूजा की सब सामा और बड़े बड़े पंडितों को साथ ले बाजे गाजे से प्रभु को लेने चले, निदान अति आदर मान से मिल, वेद विधि से भेट पूजा कर, चारों भाई श्रीकृष्णजी को सब समेत पाटंबर के पांवड़े डालते, चोआ, चंदन, गुलाब नीर छिड़कते, चांदी सोने के फूल बरसाते, धूप दीप नैवेद्य करते, बाजे गाजे से नगर में ले आये, राजा युधिष्ठिर ने प्रभु से मिल अति सुख माना, औ अपना जीतब सुफल जाना आगे बाहर भीतर सबने सब मिल यथा योग्य परस्पर सन्मान किया औ नयनों को सुख दिया; घर बाहर सारे नगर में आनन्द हो गया औ श्रीकृष्णचन्द वहां रह सब को सुख देने लगे· इति

॥ ६२ अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, कि महाराज! एक दिन श्रीकृष्णचन्द करुणासिंधु, दीनबंधु, भक्त हितकारी, ऋषि मुनि ब्राह्मण क्षत्रियों की सभा में बैठे थे, कि राजा युधिष्ठिर ने आय अति गिड़गिड़ाय बिनती कर हाथ जोड़ सिर नाय के कहा·

कि हे दीनदयाल! आप की दया से मेरे सब काम सिद्ध हुए पर एक ही अभिलाषा रही, प्रभु बोले सो क्या? राजा ने कहा, कि महाराज! मेरा यही मनोरथ है कि राजसूय यज्ञ कर आप को अर्पण करूं, तो भव सागर तरूं इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णचंद प्रसन्न हो बोले, कि राजा! यह तुमने भला मनोरथ किया इस में सुर नर मुनि ऋषि सब संतुष्ट होंगे यह बात सब को भाती है, और इसका करना तुम्हें कुछ कठिन नहीं; क्यों कि तुम्हारे चारों भाई, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, बड़े प्रतापी औ अति बली हैं; संसार में ऐसा अब कोई नहीं जो इन का सामना करे,

पहले इन्हें भेजिये कि ये जाय दशों दिशा के राजाओं को जीत अपने वश कर आवें पीछे आप निचिन्ताई से यज्ञ कीजे·

राजा! प्रभु के मुख से इतनी बात जों निकली तों हीं राजा युधिष्ठिर ने अपने चारों भाइयों को बुलाय, कटक दे चारों को चारों ओर भेजदिया, दक्षिण को सहदेवजी पधारे, पश्चिम को नकुल सिधारे, उत्तर को अर्जुन धाये, पूर्व में भीमसेनजी आये, आगे कितने एक दिन के बीच महाराज! वे चारों हरि प्राप से सात दीप नौ खंड जीत, दशों दिशा के राजाओं को वश कर अपने साथ ले आये, उस काल युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ श्री कृष्णचंदजी से कहा, कि महाराज! आपकी सहायता से यह काम तो हुआ, अब क्या आज्ञा होती है? इस में ऊधोजी बोले, कि धर्मावतार! सब देश के नरेश तो आये; पर अब एक मगध देश का राजा जरासंध ही आप के वश का नहीं, औ जब तक वह वश न होगा, तब तक यज्ञ भी करना सफल न होगा; महाराज! जरासंध राजा बृहद्रथ का बेटा महा बली बड़ा प्रतापी औ अति दानी धर्मात्मा है, हर किसी की सामर्थ नहीं जो उसका साम्हना करे, इस बात को सुन जों राजा युधिष्ठिर उदास हुए, तों श्रीकृष्णचंद बोले, कि महाराज! आप किसी बात की चिन्ता न कीजे भाई भीम अर्जुन समेत हमें आज्ञा दीजे, कै तो बल छल कर हम उसे पकड़ लावें, कै मार आवें, इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने दोनों भाइयों को आज्ञा दी, तब हरि ने उन दोनों को अपने साथ ले मगध देश की बाट ली, आगे जाय पंथ में श्रीकृष्णजी ने अरजुन और भीम से कहा, कि

विप्र रूप ह्वै पग धारिये, छल बल कर बैरी मारिये·

महाराज! इतनी बात कह श्रीकृष्णचंद जी ने ब्राह्मण का भेष किया उनके साथ भीम अर्जुन ने भी विप्र भेष लिया, तीनों त्रिपुंड किये पुस्तक कांख में लिये, अति उज्जल स्वरूप सुन्दर रूप बन ठन कर ऐसे चले, कि जैसे तीनों गुण सत्व रज तम, देह धरे जाते हैं, तीनों काल· निदान कितने एक दिनों में चले चले ये मगध देश में पहुंचे, औ दोपहर के समय राजा जरासंध की पौर पर जा खड़े हुए, इनका भेष देख पौरियों ने अपने राजा से जा कहा, कि महाराज! तीन ब्राह्मण, अतिथि, बड़े तेजस्वी, महा पंडित, अति ज्ञानी कुछ कांक्षा किये द्वारपर खड़े हैं, हमें

क्या आज्ञा होती है, महाराज! बात के सुनते ही राजा जरासंध उठ आया औ इन तीनें को प्रणाम कर अति मान सन्मान से घर में लेगया, आगे वह इन्हें सिंहासन पर बैठाय आप सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा हो, देख देख सोच सोच बोला·

याचक जो घर द्वारे आवे, बड़ो भूप सोउ अतिथि कहावे·
विप्र नहीं तुम योधा बली, बात न कछू कपट की भली·
जो ठग ठगिन रूप घर आवे, ठगि तो जाय भलो न कहावे·
छिपे न रची क्रांति तिहारी, दीसत शूर बीर बल धारी·
तेजवंत तुम तीनें भाई, शिव बिरंचि हरि से बरदाई·
मैं जान्यो जिय कर निर्मान, करो देव तुम आप बखान·
तुम्हारी इच्छा हो सो करीं, अपनी बाचा से नहिं टरीं·
दानी मिथ्या कबहु न भाखे, धन तन सर्बस कछु न राखे·
मांगो सोई देहीं दान, सुत सुन्दर सर्वस्व परान·

महाराज! इस बात के सुनते ही श्रीकृष्णचंद जी ने कहा, कि महाराज किसी समय राजा हरिश्चन्द्र बड़ा दानी होगया है, कि जिसकी कीर्त्ति संसार में अब तक छाय रही है, सुनिये एक समय राजा हरिश्चन्द्र के देश में काल पड़ा; औ अन्न बिन सब लोग मरने लगे, तब राजा ने अपना सर्वस्व बेच बेच सब को खिलाया, जब देश नगर धन गया और निर्द्धन हो राजा रहा, तद एक दिन सांझ समय यह तो कुटुंब सहित भूखा बैठा था कि इस में विस्वामित्र ने आय इनका सत देखने को यह बचन कहा, महाराज! मुझे धन दीजे, औ कन्यादान का फल लीजे, इस बचन के सुनते ही जो कुछ घर में था सो ला दिया; पुनि ऋषि ने कहा, महाराज! मेरा काम इतने में न होगा, फिर राजा ने दास दासी बेच धन ला दिया, औ धन जन गंवाय निर्द्धन निर्जन हो स्त्री पुत्र को ले रहा पुनि ऋषि ने कहा कि धर्म्ममूर्त्ति! इतने धन से मेरा काम न सरा, अब मैं किस के पास जाय मांगूं, मुझे तो संसार में तुझ से अधिक धनवान धर्मात्मा दानी कोई नहीं दृष्टि आता, हां एक सुपच नाम चांडाल मायापात्र है, कहो तो तिस से जा धन मांगूं; पर इस में भी लाज आती है कि ऐसे दानी राजा को जांच उससे क्या जांचूं महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र विस्वामित्र को

साथ ले उस चांडाल के घर गये, और इन्हों ने विप्र से कहा कि भाई ! तू हमें एक वर्ष के लिये गहने धर, औ इनका मनोरथ पूराकर. सुपच बोला,

कैसे टहल हमारी करिहो, राजन तामस मनतें हरिहो·
तुम्ह नृप महा तेज बल धारी, नीच टहल है खरी हमारी·

महाराज ! हमारे तो यही काम है कि, श्मशान में जाय चौकी दें औ जो मृतक आवे उस से कर लें, पुनि हमारे घर बार की चौकसी करें तुम से यह होसके तो मैं रुपये दूं, और तुम्हें बंधक रक्खूं, राजा ने कहा अच्छा, मैं वर्ष भर तुम्हारी सेवा करूंगा, तुम इन्हें रुपये दो, महाराज! इतना बचन राजा के मुख से निकलते ही सुपच ने विस्वामित्र को रुपये गिन दिये; वह ले अपने घर गये, औ राजा वहां रह उसकी सेवा करने लगा, कितने एक दिन पीछे काल वश हो राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहिताश्व मर गया; उस मृतक को ले रानी मरघट में गयी, और जों चिता बनाय अग्निसंस्कार करने लगी, तोंहीं राजा ने आय, कर मांगा·

रानी बिलख कहै दुख पाय, देखो समझ हिये तुम राय·

यह तुम्हारा पुत्र रोहित है, और कर देने को मेरे पास और तो कुछ नहीं, एक यह चीर है जो पहिरे खड़ी हूं, राजा ने कहा मेरा इस में कुछ बस नहीं, मैं स्वामी के कार्य्य पर खड़ा हूं, जो स्वामी का काम न करूं तो मेरा सत जाय, महाराज ! इस बात के सुनते ही रानी ने चीर उतारने को जों आंचल पर हाथ डाला, तों तीनों लोक कांप उठे, वोंहीं भगवान ने राजा रानी का सत देख पहले एक बिमान भेज दिया, औ पीछे से आय दर्शन दे तीनों का उद्धार किया, महाराज ! जब बिधाता ने रोहित को जिवाय, राजा रानी को पुत्र सहित बिमान पर बैठाय, बैकुंठ जाने की आज्ञा की, तब राजा हरिश्चन्द्र ने हाथ जोड़ भगवान से कहा, हे दीन बंधु पतित पावन, दीनदयाल ! मैं सुपच बिना बैकुंठ धाम में कैसे जा करूं विश्राम, इतना बचन सुन, औ राजा के मन का अभिप्राय जान, श्री भक्त हितकारी, करुणासिंधु हरि ने पुरी समेत सुपच को भी राजा रानी औ कुंवर के साथ तारा·

यहां हरिश्चन्द्र अमर पद पायो, वहां युगानुयुग यश चलि आयो·

महाराज ! यह प्रसंग जरासंध को सुनाय श्रीकृष्णचन्द जी ने कहा कि महाराज ! और सुनिये कि रन्तदेव ने ऐसा तप किया कि अड़तालीस

दिन बिन पानी रहा॰ औ जब जल पीने बैठा तिसी समैं कोई प्यासा आया, इसने वह नीर आप न पी, उस तृष्णावंत को पिलाया, उस जल दान से उसने मुक्ति पाई, पुनि राजा बलि ने अति दान किया, तो पाताल का राज लिया, औ अब तक उसका यश चला जाता है, फिर देखिये कि उद्दालक मुनि छठे महीने अन्न खाते थे, एक समय खाती बिरियां उनके यहां कोई अतिथि आया, उन्होंने अपना भोजन आप न खाया भूखे को खिलाया; औ उस क्षुधा ही में मरे, निदान अन्न दान करने से बैकुंठ को गये चढ़ कर बिमान॰

पुनि एक समय सब देवताओं को साथ ले राजा इन्द्र ने जाय दधीचि से कहा, कि महाराज! हम वृत्तासुर के हाथ से अब बच नहीं सक्ते, जो आप अपना अस्थि हमें दीजे तो उसके हाथ से बचें, नहीं बचना कठिन है क्योंकि वह बिन तुम्हारे हाड़ के आयुध किसी भांति न मारा जायगा, महाराज! इतनी बात के सुनते ही दधीचि ने शरीर गाय से चटवाय, जांघ का हाड़ निकाल दिया, देवताओं ने ले उस अस्थि का वज्र बनाया औ दधीचि ने प्राण गंवाय बैकुंठ धाम पाया॰

ऐसे दाता भये अपार, जिनका यश गावत संसार॰

राजा! यों कह श्रीकृष्णचंद जी ने जरासंध से कहा, कि महाराज! जैसे आगे और युग में धर्मात्मा दानी राजा होगये हैं तैसे अब इस काल में तुम हो, जों आगे उन्होंने याचकों की अभिलाषा पूरी की तों तुम हमारी आस पुजाओ, कहा है॰

याचक कहा न मांगई, दाता कहा न देय॰
गृह सुत सुंदरि लोभ नहिं, तन सिर दे यश लेय॰

इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही जरासंध बोला, कि याचक को दाता की पीर नहीं होती, तो भी दानी धीर अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता, इस में सुख पावै के दुख॰ देखो हरि ने कपट रूप कर बामन बन, राजा बलि के पास जाय तीन पैंड़ पृथ्वी मांगी; उस समय शुक्र ने बलि को चिताया तो भी राजा ने अपना प्रण न छोड़ा॰

देह समेत मही तिन दई, ताकी जग में कीरति भई॰
याचक विष्णु कहा यश लीन्हों, सर्वस ले तोऊ हठ कीन्हों॰

इस से तुम पहले अपना नाम भेद कहो, तद जो तुम मांगोगे सो मैं दूंगा, मैं मिथ्या नहीं भाषता, श्रीकृष्णचंद बोले कि राजा ! हम सची हैं बासुदेव मेरा नाम है, तुम भली भांति हमैं जानते हो, औ ये दोनों अर्जुन भीमसेन हमारे फुफेरे भाई हैं, हम युद्ध करने को तुम्हारे पास आये हैं हम से युद्ध कीजे, हम यही तुम से मांगने आये हैं, और कुछ नहीं मांगते, महाराज ! यह बात श्रीकृष्णचंद जी से सुन जरासंध हंस कर बोला, कि मैं तुझ से क्या लडूं तू मेरे सोंहों से भाग चुका है, औ अर्जुन से भी न लडूंगा; क्योंकि यह बिदर्भ देश गया था करके नारी का भेष रहा भीमसेन, कहो तो इस से लडूं, यह मेरी समान का है, इस से लड़ने में मुझे कुछ लाज नहीं ॥

पहले तुम सब भोजन करौ, पाछे मल्ल अखारे लरौ·
भोजन दे नृप बाहर आयौ, भीमसेन तहां बोल पठायौ·
अपनी गदा ताहि तिन दई, गदा दूसरी आपुन लई·
जहां सभा मंडल बन्यौ, बैठे जाय मुरारि·
जरासंध अरु भीम तहं, भये ठाढ़े एक बारि·
टोपा सीस काछना काछैं, बने रूप नटुवा के आछैं·

महाराज ! जिस समय दोनों बीर अखाड़े में खम ठोक, गदा तान धज पलट, झूम कर सन्मुख आये, उस काल ऐसे जनाये कि मानों दो मतंग मतवाले उठ धाये, आगे जरासंध ने भीमसेन से कहा कि पहले गदा तू चला, क्योंकि तू ब्राह्मण का भेष ले मेरी पैार पै आया था, इस से मैं पहले प्रहार तुझपर न करूंगा, यह बात सुन भीमसेन बोले कि राजा ! हम से तुम से धर्म्म युद्ध है, इस में यह ज्ञान न चाहिये जिसका जी चाहे सो पहले शस्त्र करे, महाराज ! उन दोनों बीरों नें परस्पर ये बातें कर एक साथ ही गदा चलायी, औ युद्ध करने लगे ॥

ताकत घात आप आपनी, चोट करत बाईं दाहनी·
अंग बचाय उछरि पग धरें, झरपहिं गदा गदा सो लरें·
खटपट चोट गदा पटकारी, लागत शब्द कुलाहल भारी·

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! इसी भांति वे दोनों बली दिन भर तो धर्म्म युद्ध करते औ सांझ को घर आय एक साथ भोजन कर बिश्राम, ऐसे नित लड़ते सताईस

दिन भये, तब एक दिवस उन दोनों के लड़ने के समय श्रीकृष्णचंद जी ने मन ही मन बिचारा, कि यह यों न मारा जायगा, क्योंकि जब यह जन्मा था, तब दो फांक हो जन्मा था, उस समय जरा राक्षसी ने आय जरासंध का मुंह औ नाक मूंदी तब दोनों फांक मिल गयीं, यह समाचार सुन उसके पिता बृहद्रथ ने ज्योतिषियों को बुलाय के पूछा, कि कहो इस लड़के का नाम क्या होगा, औ कैसा होगा ? ज्योतिषियों ने कहा कि महाराज ! इसका नाम जरासंध हुआ औ यह बड़ा प्रतापी औ अजर अमर होगा; जब तक इसकी संधि न फटेगी तब तक यह किसी से न मारा जायगा, इतना कह ज्योतिषी बिदा हो चले गये, महाराज ! यह बात श्रीकृष्णजी ने मन ही मन सोच, औ अपना बल दे भीमसेन को तिनका चीर सैन से जताया, कि इसे इस रीति से चीर डालो, प्रभु के चिताते ही भीमसेन ने जरासंध को पकड़ कर दे मारा, औ एक जांघ पर पांव दे दूसरा पांव हाथ से पकड़ यों चीर डाला; कि जैसे कोई दातन चीर डाले, जरासंध के मरते ही दुखद्वंद्व जाय सारे नगर में आनंद हो गया, उसी बिरियां जरासंध की नारी रोती पीटती आ श्रीकृष्णचंद जी के सन्मुख खड़ी हो, हाथ जोड़ बोली, कि धन्य है नाथ तुम्हें, जो ऐसा काम किया, जिसने सर्वस्व दिया, तुम ने उसका प्राण लिया, जो जन तुम्हें सुत बित औ समर्पे देह, उससे तुम करते हो ऐसा ही नेह,

कपट रूप कर छल बल कियो, जगत आय तुम यह यश लियो॥

महाराज ! जरासंध की रानी ने जब करुणा कर करुणा निधान के आगे हाथ जोड़ बिनती कर यों कहा तब प्रभु ने दयाल हो पहले जरासंध की क्रिया की, पीछे उसके सुत सहदेव को बुलाय, राजतिलक दे, सिंहासन पर बिठाय के कहा, कि पुत्र नीति सहित राज कीजो, औ ऋषि मुनि, गो, ब्राह्मण, प्रजा की रक्षा ॥ इति

॥ ६३ अध्याय ॥

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज ! राजपाट पर बैठाय समझाय श्रीकृष्णचंद जी ने सहदेव से कहा, कि राजा ! अब तुम जाय उन राजाओं को ले आओ जिन्हें तुम्हारे पिता ने पहाड़ की कंदरा में मूंद रक्खा

है, इतना बचन प्रभु के मुख से सुनते ही, जरासंध का पुत्र सहदेव बहुत अच्छा कर कंदरा के निकट जाय, उसके मुख से शिला उठाय आठ सो बीस सहस्र राजाओं को निकाल, हरि के सन्मुख ले आया, आते ही हथकड़ियां बेड़ियां पहने गले में सांकल लोहे की डालें, नख केश बढ़ाये, तन छीन मन मलीन, मैले वेश, सब राजा प्रभु के सन्मुख पांति पांति खड़े हो हाथ जोड़ बिनती कर बोले, हे कृपासिंधु दीनबंधु ! आप ने भले समय आय हमारी सुध ली, नहीं तो सब मर चुके थे, तुम्हारा दर्शन पाया हमारे जी में जी आया, पिछला दुख सब गंवाया ॥

महाराज ! इस बात के सुनते ही कृपासागर श्रीकृष्णचंद ने जो उन पर दृष्टि की, तो बात की बात में सहदेव उनको ले जाय हथकड़ी बेड़ी कड़ी कटवाय चौर करवाय न्हिलवाय धुलवाय, षटरस भोजन खिलवाय वस्त्र आभूषण पहराय, शस्त्र अस्त्र बंधवाय, पुनि हरि के सोंहीं लिवाय लाया, उस काल श्रीकृष्णचंद प्रसन्न हो बोले, कि सुनों तुम औ किसी बात की चिन्ता मत करो, आनंद से घर में बैठे नीति सहित राज्य करो, प्रजा को पालो, गौ ब्राह्मण की सेवा में रहो, झूठ मत भाषो काम क्रोध लोभ अभिमान तजो, भाव भक्ति से हरि को भजो, तुम निःसंदेह परम पद पाओगे, संसार में आय जिसने अभिमान किया, वह बहुत न जिया, देखो अभिमान ने किसे न खो दिया ॥

इतना कह श्रीकृष्णचंद जी ने सब राजाओं से कहा, कि अब तुम अपने घर जाओ कुटुम्ब से मिल अपना राज पाट संभाल हमारे न पहुंचते न पहुंचते हस्तिनापुर में राजा युधिष्ठिर के यहां राजसूय यज्ञ में शीघ्र आओ, महाराज ! इतना बचन श्रीकृष्णचंद जी के मुख से निकलते ही सहदेव ने सब राजाओं के जाने का सामान जितना चाहिये, जितना बात की बात में ला उपस्थित किया, वे ले प्रभु से बिदा हो अपने देशों को गये; औ श्रीकृष्णचंद जी भी सहदेव को साथ ले भीम अर्जुन सहित वहां से चले; चले चले आनंद मंगल से हस्तिनापुर आये, आगे प्रभु ने राजा युधिष्ठिर के पास जाय जरासंध के मरने के समाचार औ सब राजाओं के छुड़ाने के ब्योरे समेत कह सुनाये ॥

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि महाराज ! श्रीकृष्णचंद आनंदकंद जी के हस्तिनापुर पहुंचते ही वे सब राजा

भी अपनी अपनी सेना ले भेट सहित आन पहुंचे और राजा युधिष्ठिर से भेट कर भेट दे श्रीकृष्णचंद जी की आज्ञा ले हस्तिनापुर के चारों ओर जा उतरे, औ यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए इति

॥ ६४ अध्याय ॥

श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! जैसे यज्ञ राजा युधिष्ठिर ने किया औ शिशुपाल मारा गया, तैसे मैं सब कथा कहता हूं, तुम चित्त दे सुनो बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के जाते ही, चारों ओर के ओर जितने राजा थे क्या सूर्य्यवंशी, औ क्या चन्द्रवंशी, तितने सब आय हस्तिनापुर में उपस्थित हुए, उस समय श्रीकृष्णचन्द औ राजा युधिष्ठिर ने मिल कर सब राजाओं का सब भांति शिष्टाचार कर समाधान किया, औ हर एक को एक एक काम यज्ञ का सौंपा, आगे श्रीकृष्णचंद जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि महाराज! भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सहित हम पांचों भाई तो सब राजाओं को साथ ले ऊपर की टहल करें, औ आप ऋषि मुनि ब्राह्मण को बुलाय यज्ञ का आरंभ कीजे, महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने सब ऋषि मुनि ब्राह्मणों को बुला कर पूछा, कि महाराजो! जो जो वस्तु यज्ञ में चाहिये, सो सो आज्ञा कीजे॥

महाराज! इस बात के कहते ही ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने ग्रंथ देख देख यज्ञ की सब सामग्री एक पत्र पर लिखदी, औ राजा ने वोंहीं मंगवाय उनके आगे धरवा दीं; ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने मिल यज्ञ की वेदी रची चारों वेद के सब ऋषि मुनि ब्राह्मण वेदी के बीच आसन बिछाय बिछाय बैठे, पुनि शुचि हो स्त्री सहित गठजोड़ा बांध राजा युधिष्ठिर भी आय बैठे औ द्रोणाचार्य्य कृपाचार्य्य धृतराष्ट्र दुर्योधन, शिशुपाल आदि जितने योधा औ बड़े बड़े राजा थे वे भी आन बैठे, ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन कर, गणेश पुजवाय; कलश स्थापन कर, ग्रह स्थापन किया, राजा ने भरद्वाज गौतम, वशिष्ट, विश्वामित्र, बामदेव, पराशर, व्यास, कश्यप आदि बड़े बड़े ऋषि मुनि ब्राह्मणों का वरण किया, औ तिन्हों ने वेद मंत्र पढ़ पढ़ देवताओं का आवाहन किया, और राजा से यज्ञ का संकल्प करवाय, होम का आरंभ॥

महाराज ! मंच पढ़ पढ़ ऋषि मुनि ब्राह्मण आहुति देने लगे, औ देवता प्रत्यक्ष हाथ बढ़ाय बढ़ाय लेने, उस समय ब्राह्मण वेद पाठ करते थे, और सब राजा होमने की सामग्री ला ला देते थे और राजा युधिष्ठिर होमते थे, कि इस में निर्द्वंद्व यज्ञ पूर्ण हुआ, औ राजा ने पूर्णाहुति दी॥

इतनो कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! यज्ञ से निश्चिन्त हो राजा युधिष्ठिर ने सहदेव जी को बुलाय के पूछा॥

पहले पूजा काकी कीजे, अक्षत तिलक कौन कों दीजे·
कौन बड़ो देवन को ईस, ताहि पूज हम नावें सीस·

सहदेवजी बोले, कि महाराज! देवों के देव हैं बासुदेव, कोई नहीं जानता इन का भेव;

इनतें बड़ो न दीसे कोई, पूजा प्रथम इन्हीं की होई·

महाराज ! इस बात के सुनते ही सब ऋषि मुनि औ राजा बोल उठे, कि राजा! सहदेव जी ने सत्यकहा, प्रथम पूजन योग्य हरि ही हैं, तब तो राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णचंद जी को सिंहासन पर बैठाय, आठों पटरानियों समेत, चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य कर पूजा, पुनि सब देवताओं ऋषियों मुनियों ब्राह्मणों औ राजाओं की पूजा की; रंग रंग के जोड़े पहनाये; चन्दन, केसर की खौड़े कीं फूलों के हार पहराय सुगंध लगाय यथा योग्य राजा ने सब की मनुहार की, श्री शुकदेव जी बोले कि राजा !

हरि पूजत सब कों सुख भयो, शिशुपाल को सीस भूं नयो·

कितनी एक बेर तक तो वह सिर झुकाय मन ही मन कुछ सोच बिचार करता रहा, निदान काल वश हो अति क्रोध कर सिंहासन से उतर सभा के बीच निःसंकोच निडर हो बोला कि इस सभा में धृतराष्ट्र दुर्योधन, भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य्य आदि सब बड़े बड़े ज्ञानी मानी हैं; पर इस समय सब की गति मति मारी गयी, बड़े बड़े मुनीश बैठे रहे, औ नन्दगोप के सुत की पूजा भयी, औ कोई कुछ न बोला जिसने ब्रज में जन्म ले ग्वाल बालों की झूठी छाक खायी, तिस की इस सभा में भई प्रभुताई, बड़ाई॥

ताहि बड़ो सब कहत अचेत, सुरपति को बलि कागहि देत·

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! इसी भांति से काल वश हो राजा शिशुपाल अनेक अनेक बुरी बातें श्रीकृष्णचंद जी को कहता था और श्रीकृष्णचंद जी सभा के बीच सिंहासन पर बैठे, सुन सुन एक एक बात पर एक एक लकीर खैंचते थे; इस बीच भीष्मक कर्ण द्रोण, औ बड़े बड़े राजा हरि निन्दा सुन अति क्रोध कर बोले, कि अरे मूर्ख! तू सभा में बैठा, हमारे सन्मुख प्रभु की निन्दा करता है, अरे चांडाल! चुप रह नहीं अभी पछाड़ मार डालते हैं महाराज! यह कह शस्त्र ले ले सब राजा शिशुपाल के मारने को उठ धाये उस समय श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द ने सब को रोक कर कहा, कि तुम इस पर शस्त्र मत करो, खड़े खड़े देखो, यह आप से आप ही मारा जाता है, मैं इसके सौ अपराध सहूंगा, क्योंकि मैंने बचन हारा है सो से बढ़ती न सहूंगा, इसी लिये मैं रेखा काढ़ता जाता हूं॥

महाराज! इतनी बात के सुनते ही सब ने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचन्द से पूछा, कि कृपा नाथ! इसका क्या भेद है जो आप इसके सौ अपराध क्षमा करियेगा, सो कृपा कर हमें समझाइये, जो हमारे मन का संदेह जाय, प्रभु बोले, कि जिस समय यह जन्मा था तिस समय इसके तीन नेत्र औ चार भुजा थीं; यह समाचार पाय इसके पिता राजा दमघोख ने ज्योतिषियों औ बड़े बड़े पंडितों को बुलाय के पूछा, कि यह लड़का कैसा हुआ, इसका बिचार कर मुझे उत्तर दो, राजा की बात सुनते ही पंडित औ ज्योतिषियों ने शास्त्र बिचार के कहा, कि महाराज! यह बड़ा बली और प्रतापी होगा, और यह भी हमारे बिचार में आता है कि जिसके मिलने से इसकी एक आंख औ दो बांह गिर पड़ेंगी यह उसी के हाथ मारा जायगा, इतना सुन इसकी मा महादेवी, सूरसेन की बेटी, बसुदेव की बहिन, हमारी फुफी अति उदास भयी, औ आठ पहर पुत्र ही की चिन्ता में रहने लगी·

कितने एक दिन पीछे एक समय पुत्र को लिये पिता के घर द्वारका में आयी, औ इसे सब से मिलाया, जब यह मुझ से मिला, औ इसकी एक आंख औ दो बांह गिर पड़ीं, तब फुफी ने मुझे बचन बंध कर के कहा, कि इसकी मीच तुम्हारे हाथ है, तुम इसे मत मारियो, मैं यह भीख तुम से मांगती हूं, मैंने कहा अच्छा सौ अपराध हम इस के न गिनेंगे; इस उपरांत अपराध करेगा तो हनेंगे; हम से यह बचन ले

फूफू सब से बिदा हो, इतना कह, पुत्र सहित अपने घर गयी, कि यह सौ अपराध क्यों करेगा, जो कृष्ण के हाथ मरेगा ॥

महाराज ! इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्ण जी ने सब राजाओं के मन का भ्रम मिटाय, उन लकीरों को गिना, जो एक एक अपराध पर खैंची थीं गिनते ही सौ से बढ़ती हुई, तभी प्रभु ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी उसने झट शिशुपाल का सिर काट डाला ॥

श्री शुकदेव जी बोले, कि राजा ! यज्ञ के हो चुकते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को स्त्री सहित वस्त्र पहराय, ब्राह्मणों को अनगिनत दान दिया, देने का काम यज्ञ में राजा दुर्योधन का था, तिसने द्वेश कर एक की ठौर अनेक दिये, इस में उसको यश हुआ तो भी वह प्रसन्न न हुआ ॥

श्रीकृष्णजी राजा युधिष्ठिर से बिदा हो, सब सेना ले, कुटुम्ब सहित हस्तिनापुर से चले चले द्वारकापुरी पधारे, प्रभु के पहुंचते ही घर घर मंगलाचार होने लगा, औ सारे नगर में आनन्द हो गया ॥

श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज ! द्वारकापुरी में श्रीकृष्णचंद सदा बिराजें, ऋद्धि सिद्धि सब यदुबंशियों के घर घर राजें, नर नारी बसन, आभूषण ले नव भेष बनावें; चोआ चन्दन चरच सुगंध लगावें, महाजन हाट बाट चौहटे झार बुहार छिड़कावें; तहां देश देश के व्यापारी अनेक अनेक पदार्थ बेचने को लावें; जिधर तिधर पुरबासी कुतूहल करें, ठौर ठौर ब्राह्मण वेद उच्चरें, घर घर में लोग कथा पुराण सुनें सुनावें; साधु सन्त आठों जाम हरि यश गावें; सारथी रथ घुड़ बहल जोत राजद्वार पर लावें; रथी महारथी गजपति अश्वपति शूर बीर रावत योद्धा यादव राजा को जुहार करने आवें; गुणी जन नाचें गावें; बजावें; रिझावें; बंदी जन चारण यश बखान कर कर, हाथी घोड़े वस्त्र शस्त्र अन्न धन कांचन के रत्न जड़ित आभूषण पावें ॥

॥ इति संपूर्णम् ॥

॥ विज्ञापन ॥

प्रेमसागर में लल्लूजी ने कई शब्द ऐसे लिख दिये हैं कि अब वह हम लोगों के बोलने में नहीं आते, नीचे देखने से खुल जायगा और पद्य बृज भाषा में बनाये हैं ॥१॥

लल्लूजी की बोली	हम लोगोंकी बोली	लल्लूजी की बोली	हम लोगोंकी बोली
छात	छत	तिनहीं......	उन्हीं
बलूले	बुलबुले	न्यारे	अलग
सोंहीं	सामने	पै	पर
बाजने	बजने	धाया	दौड़ा
विन	उन	बिरियां......	समय
पठावेंगे........	भेजेंगे	पैज	प्रण
चढ़ि	चढ़	भुसने	भूंकने
पुनि	फिर	बुझाके	समझाके
भया	हुआ	औड़ी	गहरी
बड़गये	घुसगये	निहार......	देख
अबहीं	अभी	तधी	तभी
तद	तब	दीसे	दीखे
जद	जब	विन्हों	उन्हों

रामायण बालकांड

दो० सतानंद पद बंदि प्रभु । बैठे गुरु पहं जाइ ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब । पठवा जनक बुलाइ ॥
चौ० सीय स्वयंबर देखिय जाई । ईस काहि धों देहिं बड़ाई
लखन कहा जस भाजन सोई । नाथ कृपा तव जापर होई
हरखे मुनि सब मुनिवर बानी । दीन्ह असीस सबहि सुखमानी
पुनि मुनि बृन्द समेत कृपाला । देखन चले धनुष मखशाला
रंगभूमि आये द्वौ भाई । असि सुधि सब पुरबासिन पाई
चले सकल गृह काज बिसारी । बालक युवा जठर नर नारी
देखी जनक भीर भइ भारी । सुचि सेवक सब लिये हंकारी
तुरत सकल लोगन पहं जाहू । आसन उचित देहु सब काहू
दो० कहि मृदु बचन बिनीत तिन । बैठारे नर नारि ।
उत्तम मध्यम नीच लघु । निज निज थल अनुहारि ॥
चौ० राजकुंवर तेहि अवसर आये । मनहुं मनोहरता छबि छाये
गुन सागर नागर बर बीरा । सुन्दर स्यामल गौर शरीरा
राज समाज बिराजत रूरे । उड़गन महं जनु युग बिधि पूरे
जिन के रही भावना जैसी । प्रभु मूरत देखी तिन तैसी
देखहिं भूप महा रन धीरा । मनहुं बीर रस धरे शरीरा
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी । मनहुं भयानक मूरति भारी
रहे असुर छल जो नृप बेखा । तिन प्रभु प्रगट काल सम देखा
पुरबासिन देखे द्वौ भाई । नर भूखन लोचन सुखदाई
दो० नारि बिलोकहिं हरषि हिय । निज निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत सृंगार धरि । मूरति परम अनूप ॥
चौ० जनक जाति अवलोकहिं कैसे । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीत न जात बखानी

रामहिं चितव भाव जेहि जीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ
इहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेइ तस देखेउ कोशलराऊ
दो० राजत राज समाज महं। कोशलराज किशोर।
सुन्दर स्यामल गौर तनु। बिस्व बिलोचन चोर॥
चौ० सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ
शरद चन्द निन्दक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के
चितवन चारु मार मद हरनी। भावति हृदय जाय नहिं बरनी
कल कपोल श्रुति कुण्डल लोला। चिबुक अधर सुन्दर मृदु बोला
कुमुद बंधु कर निन्दक हासा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोक अलि अवलि लजाहीं
पीत चौतनी सिरन सुहाई। कुसुम कली बिच बीच बनाई
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवां। जनु त्रिभुवन सुखमा की सीवां
दो० कुंजर मनि कंठा कलित। उर तुलसी की माल।
वृषभ कंध केहरि ठवनि। बल निधि बाहु बिसाल॥
चौ० कटि तूनीर पीत पट बांधे। कर शर धनुष बाम बर कांधे
पीत यज्ञ उपबीत सुहाई। नख सिख मंजु महा छबि छाई
देखि लोग सब भये सुखारे। इकटक लोचन टरहिं न टारे
हरखे जनक देखि द्वौ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई
करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहिं दिखाई
जहं जहं जाहिं कुंवर बर दोऊ। तहं तहं चकित चितव सब कोऊ
निज निज रुचि रामहिं सब देखा। कोउ न जान कछु मर्म बिसेखा
भलि रचना नृप सन मुनि कहेऊ। राजा मुदित महा सुख लहेऊ
दो० सब मंचन तें मंच इक। सुन्दर बिषद बिशाल।
मुनि समेत द्वौ बंधु तहं। बैठारे महिपाल॥
चौ० प्रभुहिं देखि सब नृप हिय हारे। जनु राकेस उदय भये तारे
अस प्रतीति तिन्ह के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं
बिनु भेउ भव धनुष बिशाला। मेलिहि सीय राम उर माला
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जय प्रताप बल तेज गंवाई
बिहंसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी

तोरेहु धनुष ब्याह अवगाहा। बिन तोरे को कुंवरि बिवाहा
एक बार कालहु किन होई। सियनिजसमरजितब हम सोई
यह सुनि अपर भूप मुसुकाने। धर्म्म शील हरि भक्त सयाने
सो० सीय बिवाहव राम। गर्ब दूर करि नृपन कर।
जीति को सक संग्राम। दशरथ के रन बांकुरे॥
चौ० बृथा मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदक नहिं भूख बुताई
सिख हमारि सुनु परम पुनीता। जगदंबा जानहु जिय सीता
जगतपिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी
सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृग जल निरषि मरह कत धाई
करहु जाइ जाकहं जोइ भावा। हम तो आजु जन्म फल पावा
अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे
दो० जानि सुअवसर सीय तब। पठवा जनक बुलाइ।
चतुर सखी सुन्दरि सकल। सादर चलीं लिवाइ॥
चौ० सिय शोभा नहिं जाय बखानी। जगदम्बिका रूप गुन खानी
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृति नारि अंग अनुरागी
सीय बरनि तेहि उपमा देई। को कवि कहे अजस को लेई
जो पटतरिय तीय सम सीया। जग अस युवति कहां कमनीया
गिरा मुखर तनु अर्द्ध भवानी। रतिअतिदुखितअतनुपतिजानी
विष वारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किम बेदेही
जो छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूप मय कच्छप सोई
शोभा रजु मन्दर सृंगारू। मथे पानि पंकज निज मारू
दो० इहि बिधि उपजे लच्छि जब। सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि। कहहि सीय समतूल॥
चौ० चली संग ले सखी सयानी। गावति गीत मनोहर बानी
सोह नवल तनु सुन्दरि सारी। जगतजननिअतुलितछबिभारी
भूषन सकल सुदेश सुहाये। अंग अंग रचि सखिन बनाये
रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी
पानि सरोज सोह जय माला। औचक चितै सकल महिपाला
सीय चकित चित रामहिं चाहा। भये मोह बस सब नरनाहा
मुनि समीप बेठे द्वौ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई

दो० गुरु जन लाज समाज बड़ि। देखि सीय सकुचानि।
लगी बिलोकन सखिन तन। रघुबीरहिं उर आनि॥
चौ० राम रूप अरु सिय छबि देखी। नर नारिन परिहरी निमेखी
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधसनबिनयकरहिं मनमाहीं
हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमारि अस देहु सुहाई
बिनु बिचार प्रन तजि नरनाहू। सीय राम कर करहिं बिवाहू
जग भल कहहिं भाव सब काहू। हठ कीन्हें अन्तहु उर दाहू
यह लालसा मगन सब लोगू। बर सांवरो जानकी जोगू
तब बंदीजन जनक बुलाये। बिरदावली कहत चलि आये
कह नृप जाइ कहहु प्रन मोरा। चले भाट हिय हर्ष न थोरा
दो० बोले बंदी बचन बर। सुनहु सकल महिपाल।
प्रन बिदेह कर कहहिं हम। भुजा उठाइ बिसाल॥
चौ० नृपभुज बल बिधु सिव धनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू
रावनबान महा भट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे
सोइ पुरारि को दण्ड कठोरा। राज समाज आजु जेइ तोरा
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरै हठ तेही
सुनि प्रन सकल भूप अभिलाखे। भट मानी अतिसय मन माखे
परिकर बांध उठे अकुलाई। चले इष्ट देवन सिर नाई
तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहीं। उठइ न कोटि भांति बल करहीं
जिनके कछु बिचार मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं
दो० तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप। उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुं पाइ भट बाहु बल। अधिक अधिक गरुआइ॥
चौ० भूप सहस्रदस एकहिं बारा। लगे उठावन टरै न टारा
डगै न शंभु शरासन कैसें। कामी बचन सती मन जैसें
सब नृप भये जोग उपहांसी। जैसे बिनु बिराग सन्यासी
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर सरबस हारी
श्रीहत भये हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा
नृपन बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने
दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो प्रन ठाना
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रनधीरा

दो० कुंवरि मनोहरि बिजय बड़ि । कीरति अति कमनीय ।
पावनहार बिरंचि जनु । रचेउ न धनु दमनीय ॥
चौ० कहहु काह यह लाभ न भावा । काहु न संकर चाप चढ़ावा
रहो चढ़ाउब तोरब भाई । तिल भर भूमि न सकेहु छुड़ाई
अब जनि कोउ माखै भट मानी । बीर बिहीन मही मैं जानी
तजहु आस निज निज गृह जाहू । लिखो न बिधि बेदेहि बिवाहू
सुकृत जाइ जो प्रन परिहरऊं । कुंवरि कुवारि रहो का करऊं
जो जनित्यो बिनु भट भुंइ भाई । तौ प्रन करि होत्यो न हंसाई
जनक बचन सुनि सब नरनारी । देखि जानकिहि भये दुखारी
माखे लखन कुटिल भइ भौंहें । रदपुट फरकत नयन रिसौंहैं
दो० कहि न सकत रघुबीर डर । लगे बचन जनु बान ।
नाइ राम पद कमल सिर । बोले गिरा प्रमान ॥
चौ० रघुबंसिन महं जहं कोउ होई । तेहि समाज अस कहइ न कोई
कही जनक जस अनुचित बानी । बिद्यमान रघुकुल मनि जानी
सुनहु भानु कुल पंकज भानू । कहौं सुभाव न कछु अभिमानू
जो राउर अनुशासन पाऊं । कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊं
कांचे घट जिमि डारौं फोरी । सकौं मेरु मूलक इव तोरी
तव प्रताप महिमा भगवाना । का बापुरो पिनाक पुराना
नाथ जान अस आयसु होऊ । कौतुक करौं बिलोकिय सोऊ
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं । सत योजन प्रमाण लै धावौं
दो० तोरौं छत्रक दण्ड जिमि । तव प्रताप बल नाथ ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ । पुनि न धरौं धनु हाथ ॥
चौ० लखन सकोप बचन जब बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले
सकल लोक सब भूप डराने । सिय हिय हर्ष जनक सकुचाने
गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं । मुदित भये पुनिपुनि पुलकाहीं
सेनहिं रघुपति लखन निवारे । प्रेम समेत निकट बैठारे
बिस्वामित्र समय शुभ जानी । बोले अति सनेह मृदु बानी
उठहु राम भंजहु भव चापू । मेटहु तात जनक परितापू
सुनि गुरु बचन चरन सिर नावा । हर्ष बिषाद न कछु उर आवा
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये । ठवनि युवा मृगराज लजाये

दो० उदित उदय गिर मंच पर। रघुबर बाल पतङ्ग।
बिकसे सन्त सरोज बन। हरखे लोचन भृङ्ग॥

चौ० नृपन केरि आसा निस नासी। बचन नखत अवलीन प्रकासी
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने
गुरु पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन सन आयसु मांगा
सहजहिं चले सकल जगस्वामी। मत्त मंजु कुंजर बर गामी
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तनु भये सुखारी
बंदि पितर सुत सुकृति संभारे। जो कछु पुन्य प्रभाव हमारे
तो सिव धनुष मृनाल कि नाईं। तोरहिं राम गनेस गुसाईं

दो० रामहिं प्रेम समेत लखि। सखिन समीप बुलाइ।
सीता मातु सनेह बस। बचन कहे बिलखाइ॥

चौ० सखि सब कोतुक देखनिहारे। जोउ कहावत हितू हमारे
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं। ये बालक अस हठ भल नाहीं
गवने बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा
सो धनु राजकुंवर कर देहीं। बाल मराल कि मन्दर लेहीं
भूप सयानप सकल सिरानी। सखिबिधिगतिकछुजायनजानी
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिय न रानी
कहं कुंभज कहं सिंधु अपारा। सोखेउ सकल सुयश संसारा
रवि मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा

दो० मंत्र परम लघु जासु बस। बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महा मत्त गजराज कहं। बस कर अंकुस खर्ब॥

चौ० काम कुसुम धनु सायक लीन्हें। सकल भुवन अपने बस कीन्हें
देबि तजिय संशय अस जानी। भंजब धनुष राम सुन रानी
सखी बचन सुनि भइ परतीती। मिटा बिषाद बढ़ी अति प्रीती
तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभयहृदय बिनवतजेहि तेही
मन हीं मन मनाय अकुलानी। होहु प्रसन्न महेश भवानी
करहु सुफल आपनि सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई
गन नायक बरदायक देवा। आजु लगे कीन्हीं तव सेवा
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गरुता अति थोरी

दो० देखि देखि रघुबीर तन। सुर मनाव धरि धीर।

भरे बिलोचन प्रेम जल। पुलकावली शरीर॥ 19
चौ० नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितु प्रन सुमिरि बहुरि मन छोभा
अहह तात दारुण हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी
सचिव सभय सिख देहिं न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई
कहं धनु कुलसहु चाहि कठोरा। कहं स्यामल मृदु गात किसोरा
बिधि केहि भांति धरों उर धीरा। सिरिस सुमन किम बेधिहि हीरा
सकल सभा की मत भइ भोरी। अब मोहि शंभु चाप गति तोरी
निज जड़ता लोगन पर डारी। होहु हरहु रघुपतिहि निहारी
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष युग सम चलि जाहीं
दो० प्रभुहि चितै पुनि चितै महि। राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन युग। जनु बिधु मंडल डोल॥
चौ० गिरा अलिन मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी 20
लोचन जल रहु लोचन कोना। जैसे परम कृपन कर सोना
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीति उर आनी
तन मन बचन मोर मन सांचा। रघुपति पद सरोज मन रांचा
तौ भगवान सकल उर बासी। करिहहिं मुहि रघुपति की दासी
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु संदेहू
प्रभु तन चितै प्रेम प्रन ठाना। कृपानिधान राम सब जाना
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु ब्यालहि जैसे
दो० लखन लखेउ रघुवंशमणि। ताकेउ हर को दण्ड।
पुलकि गात बोले बचन। चरन चापि ब्रह्मण्ड॥
चौ० दिस कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीरज डोला 21
राम चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा
चाप समीप राम जब आये। नर नारिन सुर सुकृत मनाये
सब कर संशय अरु अज्ञानू। मंद महीपन कर अभिमानू
भृगुपति केरि गर्व गरुआई। सुर मुनि बरन केरि कदराई
सियकर सोच जनक पछतावा। रानिन कर दारुन दुख दावा
शंभु चाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाइ सब संग बनाई
राम बाहु बल सिंधु अपारा। चहत पार नहिं कोउ कनहारा
दो० राम बिलोके लोग सब। चित्र लिखे से देखि।

चितई सीय कृपायतन । जाना बिकल बिसेखि ॥

चौ० देखी बिपुल बिकल बैदेही । निमिष बिहात कल्प सम तेही
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा । मुये करै का सुधा तड़ागा
का बर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूक पुनि का पछिताने
अस जिय जान जानकी देखी । प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेखी
गुरुहि प्रणाम मनहिं मन कीन्हा । अति लाघव उठाय धनु लीन्हा
दमकेउ दामिनि जिमि घन लयऊ । पुनि धनु नभमंडल सम भयऊ
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहु न लखा देख सब ठाढ़े
तेहि छन मध्य राम धनु तोरा । भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा

छंद भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं
कोदंड भंजेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं

सो० शंकर चाप जहाज । सागर रघुबर बाहु बल ।
बूड़े सकल समाज । चढ़े जे प्रथमहिं मोह बस ॥

चौ० प्रभु द्वौ खंड चाप महि डारे । देखि लोग सब भये सुखारे
कौसिक रूप पयोनिधि पावन । प्रेम बारि अवगाह सुहावन
राम रूप राकेस निहारी । बढ़ी बीच पुलकावल भारी
रही भुवन भरि जय जय बानी । धनुष भंग धुनि जात न जानी
मुदित कहहिं जहं तहं नर नारी । भंजेउ राम शंभु धनु भारी

दो० बन्दी मागध सूत गन । बिरद बदहिं मत धीर ।
करहिं निछावर लोग सब । हय गज धन मनि चीर ॥

चौ० झांझ मृदंग शंख सहनाई । भेरि ढोल दुन्दुभी सुहाई
बाजहिं बहु बाजने सुहाये । जहं तहं युवतिन मंगल गाये
सखिन सहित हर्षित अति रानी । सूखत धान परा जनु पानी
जनक लहेउ सुख सोच बिहाई । पैरत थके थाह जनु पाई
स्रोहत भये भूप धनु टूटे । जैसे दिवस दीप छबि छूटे
सिय हिय सुख बरने केहि भांती । जनु चातकी पाइ जल स्वांती
रामहिं लखन बिलोकत कैसे । ससिहिं चकोर किसोरक जैसे
सतानंद तब आयसु दीन्हा । सीता गवन राम पहं कीन्हा

अध्याह.

दो० संग सखी सुन्दर चतुर । गावहिं मंगल चार ।
गवनी बाल मराल गति । सुखमा अंग अपार ॥
चौ० सखिन मध्य सिय सोहति कैसी । छबि गन मध्य महा छबि जैसी
कर सरोज जयमाल सुहाई । विश्व बिजय सोभा जनु छाई
तन सकोच मन परम उछाहू । गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू
जाइ समीप राम छबि देखी । रहि जनु कुंवरि चित्र अवरेखी
चतुर सखी लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सुहाई
सुनत युगल कर माल उठाई । प्रेम बिबस पहिराइ न जाई
सोहत जनु युग जलज सनाला । ससिहिं सभीत देत जयमाला
गावहिं छबि अवलोक सहेली । सिय जयमाल राम उर मेली
तब सिय देखि भूप अभिलाखे । कूर कपूत मूढ़ मन माखे
उठि उठि पहिर सनाह अभागे । जहं तहं गाल बजावन लागे
लेहु छुड़ाइ सीय कह कोऊ । धरि बांधहु नृप बालक दोऊ
तोरे धनुष चांड नहिं सरई । जीवति हमहि कुवरि के। बरई
जो बिदेह कछु करै सहाई । जीतहु समर सहित दोउ भाई
साधु भूप बोले सुनि बानी । राज समाजहिं लाज लजानी
बल प्रताप बीरता बड़ाई । नाक पिनाकहि संग सिधाई
सोइ सूरता कि अब कहुं पाई । अस बुधि तो बिधि मुंहमसिलाई
दो० देखहु रामहिं नयन भरि । तजि इरषा मद मोहु ।
लखन रोष पावक प्रवल । जानि सलभ जनि होहु ।
चौ० बैनतेय बलि जिमि चह कागू । जिमि ससचहहि नाग अरिभागू
जिमि चह कुसल अकारन कोही । सुख संपदा चहहिं शिवद्रोही
लोभी लोलुप कीरति चहई । अकलंकता कि कामी लहई
हरि पद बिमुख परम गति चाहा । तस तुम्हार लालच नरनाहा
कोलाहल सुनि सीय सकानी । सखी लिवाइ गई जहं रानी
राम सुभाव चले गुरु पाहीं । सिय सनेह बरनत मन माहीं
रानिन सहित सोच बस सीया । अवधों बिधिहि कहा करनीया
भूप बचन सुनि इत उत तकहीं । लखन राम डर बोल न सकहीं
दो० अरुन नयन भृकुटी कुटिल । चितवत नृपन सकोप ।
मनहुं मत्त गज गन निरखि । सिंह किसोरहि चोप ॥

चौ० खरभर देखि बिकल नर नारी । सब मिल देहिं महीपन गारी
तेहि अवसर सुनि शिव धनु भंगा । आये भृगुकुल कमल पतंगा
देखि महीप सकल सकुचाने । बाज झपट जनु लवा लुकाने
गौर शरीर भूत भलि भ्राजा । भाल बिशाल त्रिपुंड बिराजा
शीस जटा शशि बदन सुहावा । रिस बस कछुक अरुन ह्वै आवा
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते । सहजहिं चितवत मनहुं रिसाते
बृषभ कंध उर बाहु बिशाला । चारु जनेउ माल मृगछाला
कटि मुनि बसन तून दुइ बांधे । धनु सर कर कुठार कल कांधे
दो० सन्त भेष करनी कठिन । बरनि न जाइ सरूप ।
धरि मुनि तनु जनु बीर रस । आये जहं सब भूप ॥
चौ० देखत भृगुपति भेष कराला । उठे सकल भय बिकल भुआला
पितु समेत कहि कहि निज नामा । लगे करन सब दंड प्रनामा
जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी । सो जाने जनु आयु खुटानी
जनक बहोरि आय सिर नावा । सीय बुलाय प्रनाम करावा
आसिष दीन्ह सखी हरखानी । निज समाज लै गई सयानी
बिश्वामित्र मिले पुनि आई । पद सरोज मेले द्वौ भाई
राम लखन दशरथ के ढोटा । दीन्ह असीस जानि भल जोटा
रामहिं चितय रहे थकि लोचन । रूप अपार मार मद मोचन
दो० बहुरि बिलोकि बिदेह सन । कहहु कहा अति भीर ।
पूछत जान अजान जिमि । ब्यापेउ कोप शरीर ॥
चौ० समाचार कहि जनक सुनाये । जेहि कारन महीप सब आये
सुनत बचन फिर अनत निहारे । देखे चाप खंड महि डारे
अति रिस बोले बचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा
बेगि दिखाउ मूढ़ नतु आजू । उलटौं महि जहं लग तव राजू
अति डर उतर देत नृप नाहीं । कुटिल भूप हरखे मन माहीं
सुर मुनि नाग नगर नर नारी । सोचहिं सकल त्रास भय भारी
मन पछताति सीय महतारी । बिधि संवारि सब बात बिगारी
भृगुपति कर सुभाव सुनि सीता । अर्द्ध निमेष कल्प सम बीता
दो० सभय बिलोके लोग सब । जानि जानकी भीर ।
हृदय न हर्ष बिषाद कछु । बोले श्री रघुबीर ॥

चौ० नाथ शंभु धनु भंजनिहारा। होइहि कोउ इक दास तुम्हारा
आयसु कहा कहिय किन मोही। सुनि रिसाय बोले मुनि कोही
सेवक सोइ जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिय लराई
सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। नतु मारे जै हैं सब राजा
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसु धरहिं अपमाने
बहु धनुहीं तोरेउं लरकाईं। कबहुं न अस रिस कीन्ह गोसाईं
इहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू
दो० रे नृप बालक काल बस। बोलत तोहि न संभार।
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु। बिदित सकल संसार॥
चौ० लखन कहा हंसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना
का छति लाभ जीर्ण धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे
छुवत टूट रघुपतिहिं न दोखू। मुनि बिनु काज करिय कत रोखू
बोले चितय परसु की ओरा। रे शठ सुनेसि सुभाव न मोरा
बालक बोलि बधौं नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानेसि मोही
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। विस्व विदित छत्री कुल द्रोही
भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बारि महिदेवन दीन्ही
सहसबाहु भुज छेदनहारा। परसु बिलोकि महीपकुमारा
दो० मातु पितहिं जनु सोच बस। करसि महीप किसोर।
गर्भन के अर्भक दलन। परसु मोर अति घोर॥
चौ० बिहंसि लखन बोले मृदु बानी। अहो मुनीश महा भट मानी
पुनि पुनि मोहि दिखाव कुठारा। चहत उड़ावन फूंकि पहारा
इहां कुम्हड़ बतियां कोउ नाहीं। जो तर्जनि देखत मर जाहीं
देखि कुठार शरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहौं रिस रोकी
सुर महिसुर हरि जन अरु गाई। हमरे कुल इन पर न सुराई
बधे पाप अपकीरति हारे। मारत हू पां परिय तुम्हारे
कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा। बृथा धरहु धनु बान कुठारा
दो० जो बिलोकि अनुचित कहेउं। छमहु महा मुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुवंश मनि। बोले गिरा गँभीर॥

चौ० कौसिक सुनहु मंद यह बालक । कुटिल काल बस निज कुलघालक
भानु वंश राकेस कलंकू । निपट निरंकुश अबुध असंकू
काल कवर होइहि छन माहीं । कहौं पुकारि खोरि मोहि नाहीं
तुम हटकहु जो चहहु उबारा । कहि प्रताप बल रोष हमारा
लखनकहेउमुनि सुयशतुम्हारा । तुमहिं अछत को बरने पारा
अपने मुख तुम आपनि करनी । बार अनेक भांति बहु बरनी
नहिं संतोष तो पुनि कछु कहहू । जनि रिस रोक दुसह दुख सहहू
वीर वृत्ति तुम धीर अछोभा । गारी देत न पावहु शोभा
दो० सूर समर करनी करहिं । कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रन पाइ रिपु । कायर करहिं प्रलापु ॥
चौ० तुम तो काल हांकि जनु लावा । बार बार मोहि लागि बुलावा
सुनत लखन के बचन कठोरा । परस सुधारि धरेउ कर घोरा
अब जनि देइ दोष मोहि लोगू । कटुबादी बालक बध योगू
बाल बिलोकि बहुत मैं बांचा । अब यह मरनहार भा सांचा
कौसिक कहा छमिय अपराधू । बाल दोष गुन गनहिं न साधू
कर कुठार में अकरन कोही । आगे अपराधी गुरु द्रोही
उतर देत छांड़ों बिनु मारे । केवल कौसिक सील तुम्हारे
नतु इहि काटि कुठार कठोरे । गुरुहिं उरिन होतेउं श्रम थोरे
दो० गाधिसुअन कह हृदय हंसि । मुनिहिं हरिअरे सूझ ।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि । अजहुं न बूझ अबूझ ॥
चौ० कहेउ लखन मुनि सील तुम्हारा । को नहिं जान बिदित संसारा
मातुहिं पितुहिं उरिन भये नीके । गुरु ऋन रहा सोच बड़ जीके
सो जनु हमरे माथे काढ़ा । दिन चलि गयेउ ब्याज बहु बाढ़ा
अब आनिय ब्यवहरिया बोली । तुरत देव मैं थैली खोली
सुनि कटु बचन कुठार सुधारा । हाहा कहि सब लोग पुकारा
भृगुबर परसु दिखावहु मोही । बिप्र बिचारि बचौ नृप द्रोही
मिले न कबहुं सुभट रन गाढ़े । द्विज देवता घरहिं के बाढ़े
अनुचित कहि सब लोग पुकारे । रघुपति सैनहिं लखन निवारे
दो० लखन उतर आहुति सरिस । भृगुपति कोप कृशानु ।
बढ़त देखि जल सम बचन । बोले रघुकुल भानु ॥

चै० नाथ करहु बालक पर छोहू । सुद्ध दूध मुख करिये न कोहू
जो पै प्रभु प्रभाव कछु जाना । तौ कि बराबर करत अयाना
जों लरिका कछु अनुचित करहीं । गुरु पितु मातु मोह मन भरहीं
करिये कृपा सिसु सेवक जानी । तुम सम सील धीर मुनि ज्ञानी
राम बचन सुन कछुक जुड़ाने । कहि कछु लखन बहुरि मुसुकाने
हंसत देखि नखसिख रिस व्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी
गौर शरीर श्याम मन माहीं । कालकूट मुख पय मुख नाहीं
सहज टेढ़ अनुहरै न तोही । नीच मीच सम लखै न मोही
दो० लखन कहेउ हंसि सुनहु मुनि । क्रोध पाप कर मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहिं । चलहिं बिस्व प्रतिकूल ॥
चै० मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया । परहरि कोप करिय अब दाया
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने । बैठिय होइहहि पाय पिराने
जो अति प्रिय तो करिय उपाई । जोरिय कोउ बड़ गुनिय बुलाई
बोलत लखनहिं जनक डरांहीं । मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं
थर थर कांपहिं पुर नर नारी । छोट कुमार खोट अति भारी
भृगुपति सुनिसुनि निर्भय बानी । रिस तनु जरै होइ बल हानी
बोले रामहिं देइ निहोरा । बचौं बिचारि बंधु लघु तोरा
मन मलीन तनु सुन्दर कैसे । बिष रस भरा कनक घट जैसे
दो० सुनि लछमन बिहंसे बहुरि । नयन तरेरे राम ।
गुरु समीप गवने सकुचि । परिहरि बानी बाम ॥
चै० अति बिनीत मृदु सीतल बानी । बोले राम जोरि युग पानी
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना । बालक बचन करिये नहिं काना
बररै बालक एक सुभाऊ । इनहिं न सन्त बिदूखहिं काऊ
तिन नाहीं कछु काज बिगारा । अपराधी मैं नाथ तुम्हारा
कृपा कोप बध बंधु गुसाईं । मोपर करिय दास की नाईं
करिय बेगि जेहि बिधि रिस जाई । मुनि नायक सोइ करिय उपाई
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे । अजहु अनुज तव चितव अनैसे
इहि के कंठ कुठार न दीन्हा । तौ मैं कहा कोप करि कीन्हा
दो० गर्भ स्रवहिं अवनि पर । सुनि कुठार अति घोर ।
परसु अछत देखों जियत । बैरी भूप किसोर ॥

चौ० बहै न हाथ दहै रिस छाती । भा कुठार कुंठित नृप घाती
भयेउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ । मोरे हृदय कृपा कसि काऊ
आज दैव दुख दुसह सहावा । सुनि सौमित्र बिहंसि सिर नावा
बाउ कृपा मूरति अनुकूला । बोलत बचन झरत जनु फूला
जो पै कृपा जरै मुनि गाता । क्रोध भये तनु राखु बिधाता
देखु जनक हठि बालक एहू । कीन्ह चहत जड़ यमपुर गेहू
बेगि करहु किन आंखन ओटा । देखत छोट खोट नृप ढोटा
बिहंसे लखन कहा मुनि पांहीं । मूंदिय आंख कतहुं कोउ नाहीं

दो० परसु राम तब राम प्रति । बोले बचन सक्रोध ।
शंभु सरासन तोरि सठ । करसि हमार प्रबोध ॥

चौ० बंधु कहै कटु संमत तोरे । तू छल बिनय करसि कर जोरे
करु परितोष मोर संग्रामा । नाहिंत छांड़ु कहाउब रामा
छल तजि करहु समर शिव द्रोही । बंधु सहित नतु मारौं तोही
भृगुपति तमकि कुठार उठाये । मन मुसुकाहिं राम सिर नाये
गुनहु लखन कर हम पर रोखू । कतहुं सुधाइहुं तें बड़ दोखू
टेढ़ जान संका सब काहू । वक्र चंद्रमहिं ग्रसै न राहू
राम कहेउ रिस तजिय मुनीसा । कर कुठार आगे यह सीसा
जेहि रिस जाइ करिये सोइ स्वामी । मोहि जानि आपन अनुगामी

दो० प्रभु सेवकहिं समर कस । तजहु बिप्र बर रोष ।
भेख बिलोकि कहेसि कछु । बालकहूं नहिं दोष ॥

चौ० देखि कुठार बान धनु धारी । भै लरकहिं रिस बीर बिचारी
नाम जान पै तुमहिं न चीन्हा । बंस सुभाव उतर तेहि दीन्हा
जो तुम अवतेउ मुनि की नाईं । पद रज सिर सिसु धरत गुसाईं
छमहु चूक अनजानत केरी । चहिये बिप्र उर कृपा घनेरी
हमहिं तुमहिं सरबरि कस नाथा । कहहु तो कहां चरन कहं माथा
राममात्र लघु नाम हमारा । परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा
देव एक गुन धनुष हमारे । नवगुन परम पुनीत तुम्हारे
सब प्रकार हम तुम सन हारे । छमहु बिप्र अपराध हमारे

दो० बार बार मुनि बिप्र बर । कहा राम सन राम ।
बोले भृगुपति सरुष होइ । तुहूं बंधु सम बाम ॥

चौ० निपटहिद्विजकरिजानहुंमोही । मैं जस विप्र सुनाऊं तोही
चाप स्रुवा सर आहुति जानू । कोप मोर अति घोर कृशानू
समिध सेन चतुरंग सुहाई । महा महीप भये पशु आई
मैं इहि परस काटि बल दीन्हा । समर यज्ञ जग कोटिन कीन्हा
मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे । बोलसि निदर विप्र के भोरे
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा । अहमिति मनहुं जीति जग ठाढ़ा
राम कहा मुनि कहहु बिचारी । रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी
छुअतहि टूट पिनाक पुराना । मैं केहि हेतु करौं अभिमाना
दो० जो हम निदरहिं विप्र बदि । सत्य सुनहु भृगुनाथ ।
तो अस को जग सुभटि जेहि । भय बस नावहिं माथ ॥
चौ० देव दनुज भूपति भट नाना । सम बल अधिक होउ बलवाना
जो रन हमहिं प्रचारय कोऊ । लरहिं सुखेन काल किन होऊ
छत्रिय तनु धरि समर सकाना । कुल कलंक तेहि पावर आना
कहौं सुभाव न कुलहि प्रसंशी । कालहु डरहिं न रन रघुवंशी
विप्र वंश की असि प्रभुताई । अभय होइ जो तुमहिं डराई
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के । उघरे पटल परसुधर मति के
राम रमापति कर धनु लेहू । खैंचहु मोर मिटै सन्देहू
देत चापु आपुहि चढ़ि गयऊ । परसुराम मन विस्मय भयऊ
दो० जाना राम प्रभाव तब । पुलक प्रफुल्लित गात ।
जोरि पानि बोले बचन । प्रेम न हृदय समात ॥
चौ० जय रघुवंश बनज बन भानू । गहन दनुज कुल दहन कृशानू
जय सुर विप्र धेनु हितकारी । जय मद मोह कोह भ्रमहारी
बिनय शील करुना गुन सागर । जयति बचन रचना अति आगर
सेवक सुखद सुभग सब अंगा । जय सरीर छबि कोटि अनंगा
करौं कहा मुख एक प्रसंसा । जय महेश मन मानस हंसा
अनुचित बहुत कहेउं अज्ञाता । छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता
कहि जय जय जय रघुकुलकेतू । भृगुपति गये बनहि तप हेतू
अपभय कुटिल महीप डराने । जहं तहं कायर गवहिं पराने
दो० देवन दीन्ही दुन्दुभी । प्रभु पर बरषहिं फूल ।
हरषे पुर नर नारि सब । मिटा मोह भय सूल ॥

चौ० अति गहगहे बाजने बाजे । सबहिं मनोहर मंगल साजे
यूथ यूथ मिल सुमुखि सुनयनी । करहिं गान कल कोकिल बयनी
सुख बिदेह कर बरनि न जाई । जन्म दरिद्र मनहु निधि पाई
बिगत त्रास भय सोय सुखारी । जनु बिधु उदय चकोर कुमारी
जनक कीन्ह कौसिकहिं प्रनामा । प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुं भाई । अब जो उचित सो करिय गुसांई
कह मुनि सुनि नरनाह प्रबीना । रहा बिवाह चाप आधीना
टूटतहीं धनु भयउ बिवाहू । सुर नर नाग बिदित सब काहू
दो० तदपि जाय तुम करहु अब । यथा बंस व्यवहार ।
बूझि बिप्र कुल बृद्ध गुरु । बेद बिदित आचार ॥
चौ० दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनै नृप दसरथहिं बुलाई
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला । पठये दूत अवध तेहि काला
बहुरि महाजन सकल बुलाये । आय सबनि सादर सिर नाये
हाट बाट मंदिर सुर बासा । नगर संवारहु चारिहु पासा
हरषि चले निज निज गृह आये । पुनि परिचारक बोलि पठाये
रचहु बिचित्र बितान बनाई । सिर धरि बचन चलेस चुनाई
पठये बोलि गुनी तिन्ह नाना । जे बितान बिधि कुसल सुजाना
बिधिहिं बंद तिन्ह कीन्ह अरंभा । बिरचे कनक कदली थंभा
दो० हरित मनिन के पत्र फल । पद्मराग के फूल ।
रचना देखि बिचित्र अति । मन बिरंच के भूल ॥
चौ० बेनु हरित मनि मय सब कीन्हें । सरस सवर्न परहिं नहिं चीन्हें
कनक कलित अहि बेल बनाई । लखि नहिं परै सवर्न सुहाई
तेहि के रचि पचि बंध बनाये । बिच बिच मुकुता दाम सुहाये
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा । चीरि कोरि पचि रचे सरोजा
किये भृंग बहु रंग बिहंगा । गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा
सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ी । मंगल द्रव्य लिये सब ठाढ़ी
चौके भांति अनेक पुराईं । सिंदुर मनि मय सहज सुहाई
दो० सौरभ पल्लव सुभग सुठि । किये नील मनि कोरि ।
हेम बौर मरकत घवरि । लसत पाट मय डोरि ॥
चौ० रचे रुचिर बर बंदरवारे । मनहुं मनोभव फंद संवारे

मंगल कलस अनेक बनाये। ध्वज पताक पट चमर सुहाये
दीप मनोहर मनि मय नाना। जाइ न बरनि बिचित्र बिताना
जेहि मंडप दुलहिन बैदेही। सो बरनै असि मति कवि केही
दूलह राम रूप गुन सागर। सो बितान तिहुं लोक उजागर
जनक भवन की शोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिये तैसी
जेहिं तिरहुति तेहिं समय निहारी। तेहिं लघु लगे भुवन दसचारी
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोक सुरनायक मोहा

दो० बसै नगर जेहि लच्छि करि। कपट नारि बर भेष।
तेहि पुर की शोभा कहत। सकुचे सारद सेष॥

चौ० पहुंचे दूत राम पुर पावन। हरखे नगर बिलोक सुहावन
भूप द्वार तिन्ह खबर जनाई। दसरथ नृप सुनि लिये बुलाई
करि प्रनाम तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महीप आप उठि लीन्ही
बारि बिलोचन बांचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती
राम लखन उर कर बर चीठी। रहि गये कहत न खाटी मीठी
पुनि धरि धीर पत्रिका बांची। हरखी सभा बात सुनि सांची
खेलत रहे तहां सुधि पाई। आये भरथ सहित द्वौ भाई
पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहां ते पाती आई

दो० कुशल प्रान प्रिय बंधु दोउ। अहहिं कहहु केहि देस।
सुनि सनेह साने बचन। बांची बहुरि नरेस॥

चौ० सुनि पाती पुलके द्वौ भ्राता। अधिक सनेह समात न गाता
प्रीत पुनीति भरत की देखी। सकल सभा सुख लहेउ बिशेखी
तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे
भैया कहहु कुसल द्वौ बारे। तुम नीके निज नयनं निहारे
स्यामल गौर धरे धनु भाथा। बय किशोर कौसिक मुनि साथा
पहिचानेउ तो कहहु सुभाऊ। प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ
जा दिन तें मुनि गये लिवाई। तबतें आजु सांचि सुधि पाई
कहहु बिदेह कवन बिधि जाने। सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने

दो० सुनहुं महीपति मुकुटमनि। तुम सम धन्य न कोउ।
राम लखन जिनके तनय। बिस्व बिभूषन दोउ॥

चौ० पूछन योग न तनय तुम्हारे। पुरुष सिंह तिहुं पुर उजियारे

जिन के जय प्रताप के आगे । शशि मलीन रवि सीतल लागे
तिनकहं कहिय नाथ किमि चीन्हे । देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे
सीय स्वयम्बर भूप अनेका । सिमटे सुभट एक तें एका
शंभु शरासन काहु न टारा । हारे सकल भूप बरियारा
तीन लोक महं जे भट मानी । सब की शक्ति शंभु धनु भानी
सके उठाइ शरासन मेरू । सोउ हिय हारि गयउ करफेरू
जेहिं कैातुक शिव सैल उठावा । सोउ तेहि सभा पराभव पावा
दो० तहां राम रघुवंश मनि । सुनिय महा महिपाल ।
भंजेउ चाप प्रयास बिन । जिमि गज पंकज नाल ॥
चो० सुनि सरोष भृगुनायक आये । बहुत भांति तिन आंखि दिखाये
देखि राम बल निज धनु दीन्हा । करि बहु बिनय गवन बन कीन्हा
राजत राम अतुल बल जैसे । तेज निधान लखन पुनि तैसे
कंपहिं भूप बिलोकत जाके । जिमि गज हरि किसोर के ताके
देव देखि तव बालक दोऊ । अवनि आंखतर आव न कोऊ
दूत बचन रचना प्रिय लागी । प्रेम प्रताप बीर रस पागी
सभा समेत राउ अनुरागे । दूतहिं देन निछावर लागे
कहि अनीति ते मूंदेउ काना । धर्म बिचार सबहिं सुख माना
दो० तब उठि भूप वसिष्ठ कहं । दीन्ह पत्रिका जाइ ।
कथा सुनाइ गुरुहि सब । सादर दूत बुलाइ ॥
चो० सुनि बोले मुनि अति सुख पाई । पुन्य पुरुष कहं महि सुख छाई
जिमि सरिता सागर महं जाहीं । यद्यपि ताहि कामना नाहीं
तिमि सुख संपति बिनहिं बुलाये । धर्म सील पहं जाहिं सुभाये
तुम गुरु विप्र धेनु सुर सेवी । तस पुनीत कैाशल्या देवी
सुकृती तुम समान जग माहीं । भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं
तुम तें अधिक पुन्य बड़ काके । राजत राम सरिस सुत जाके
बीर बिनीत धर्म ब्रत धारी । गुन सागर बालक बर चारी
तुम कहं सर्व काल कल्याना । सजहु बरात बजाइ निसाना
दो० चलेउ बेगि सुनि गुरु बचन । भलेहि नाथ सिर नाइ ।
भूपति गवने भवन तब । दूतहिं बास दिवाइ ॥
चो० राजा सब रनवास बुलाई । जनक पत्रिका बांच सुनाई

मुनि संदेस सकल हरखानी। अपर कथा सब भूप बखानी
प्रेम प्रफुल्लित राजा रानी। मनहुं सिखिन सुनि बारिद बानी
मुदित असीस देहिं गुरु नारी। अति आनन्द मगन महतारी
लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती। हृदय लगाइ जुड़ावहिं छाती
राम लखन की कीरति करनी। बारहिं बार भूप बर बरनी
मुनि प्रसाद कह द्वार सिधाये। रानिन्ह तब महिदेव बुलाये
दिये दान आनन्द समेता। चले विप्र बर आसिष देता
सो० याचक लिये हंकारि। दीन्ह निछावरि कोटि बिधि।
चिर जीवहु सुत चारि। चक्रवर्त्ति दशरत्थ के॥
चौ० कहत चले पहिरे पट नाना। हरखि हने गहगहे निसाना
समाचार सब लोगन पाये। लागे घर घर होन बधाये
भुवन चारि दस भरेउ उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिवाहू
सुनि शुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली संवारन लागे
यद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि
तद्यपि प्रीति कि रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई
ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम विचित्र बजारू
कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अक्षत माला
दो० मंगलमय निज निज भवन। लोगन रचे बनाइ।
बीथी सींचो चतुर सब। चौके चारु पुराइ॥
चौ० जहं तहं यूथ यूथ मिलि भामिनि। सजि नव सप्त सकल द्युतदामिनि
बिधुबदनी मृगशावक लोचनि। निज सरूप रति मान बिमोचनि
गावहिं मंगल मंजुलि बानी। सुनि कलरव कलकंठ लजानी
भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिस्व बिमोहन रचेउ बिताना
मंगल द्रव्य मनोहर नाना। गाजत बाजत बिपुल निसाना
कतहुं बिरद बंदी उच्चरहीं। कतहुं बेद धुनि भूसुर करहीं
गावहिं सुन्दर मंगल गीता। ले ले नाम राम अरु सीता
बहुत उछाह भवन अति थोरा। मानहुं उमगि चला चहुं ओरा
दो० शोभा दशरथ भवन की। को कबि बरनै पार।
जहां सकल सुर सीस मनि। राम लीन्ह अवतार॥
चौ० भूप भरत पुनि लिये बुलाई। हय गज स्यन्दन साजहु जाई

चलहु बेगि रघुबीर बराता । सुनत पुलक पूरे द्वौ भ्राता
भरत सकल साहनी बुलाये । आयसु दीन्ह मुदित उठधाये
रचि रचि जीन तुरंग तिन साजे । बरन बरन बर बाजि बिराजे
सुभग सकल सुठि चंचल करनी । अय जिमि जरत धरत पगु धरनी
नाना भांति न जाहिं बखाने । निदरि पवन जनु चहत उड़ाने
तिन सब छयल भये असवारा । भरत सरिस सब राजकुमारा
सब सुन्दर सब भूखन धारी । कर शर चाप तून कटि भारी
दो० छरे छबीले छयल सब । सूर सुजान नवीन ।
युग पदचर असवार प्रति । जे अस कला प्रवीन ॥
चौ० बांधे बिरद बीर रन गाढ़े । निकसि भये पुर बाहिर ठाढ़े
फेरहिं चतुर तुरंग गति नाना । हरखहिं धुनि सुनि पनव निसाना
रथ सारथिन बिचित्र बनाये । ध्वज पताक मनि भूखन छाये
चवर चारु किंकिनि धुनि करहीं । भानु यान शोभा अपहरहीं
स्याम कर्ण अगनित हय होते । ते तिन्ह रथिन सारथिन जोते
सुन्दर सकल अलंकृत सोहैं । जिनहिं बिलोकत मुनि मन मोहैं
जे जल चलहिं थलहिं की नाईं । टापु न बूड़ बेग अधिकाईं
अस्त्र शस्त्र सब साज सजाईं । रथी सारथिन लिये बुलाईं
दो० चढ़ि चढ़ि रथ बाहर नगर । लागी जुरन बरात ।
होत सगुन सुन्दर सबहि । जो जेहि कारज जात ॥
चौ० कलित करिवरन्ह परी अंबारी । कहि न जाइ जेहि भांति संवारी
चले मत्त गज घंट बिराजे । मनहुं सुभग सांवन घन गाजे
बाहन अपर अनेक बिधाना । सिविका सुभग सुखासन याना
तिन चढ़ि चले बिप्र बर वृन्दा । जनु तनु धरे सकल श्रुतिछन्दा
मागध सूत बंदि गुन गायक । चले यान चढ़ि जो जेहि लायक
बेसर ऊंट वृषभ बहु जाती । चले वस्तु भरि अगनित भांती
कोटिन कांवर चले कहारा । बिबिध वस्तु को बरनै पारा
चले सकल सेवक समुदाई । निज निज साज समाज बनाई
दो० सब के उर निर्भर हरष । पूरित पुलक शरीर ।
कबहिं देखिहैं नयन भर । राम लखन द्वौ बीर ॥
चौ० गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा । रथ रव बाजि हींस चहुं ओरा

निदरि घनहिं घूमरहिं निसाना । निज पराइ कछु सुनिय न काना
महा भीर भूपति के द्वारे । रज होइ जाइ पखान पवारे
चढ़ी अटारिन देखहिं नारी । लिये आरती मंगल थारी
गावहिं गीत मनोहर नाना । अति आनंद नहिं जाइ बखाना
तब सुमंत दुइ स्यन्दन साजी । जोते रवि हय निंदक बाजी
द्वौ रथ रुचिर भूप पहं आने । नहिं सारद प्रति जाहिं बखाने
राज समाज एक रथ भ्राजा । दूसर तेज पुंज अति राजा
दो० तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहं । हरषि चढ़ाइ नरेस ।
आपु चढ़ेउ स्यन्दन सुमिर । हर गुरु गौर गनेस ॥
चौ० सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसे । सुर गुरु संग पुरंदर जैसे
करि कुल रीति बेद बिधि राऊ । देखि सबहि सब भांति बनाऊ
सुमिर राम गुरु आयसु पाई । चले महीपति संख बजाई
भयउ कुलाहल हय गज गाजे । ब्योम बसंत बाजने बाजे
सुर नर नारि सुमंगल गाई । सरस राग बाजहि सहनाई
घंटिघंटि धुनि बरनि न जाई । सरौं करैं पायक फहराई
करहिं बिदूषक कौतुक नाना । हांस कुशल कल गान सुजाना
दो० तुरग नचावहिं कुवर बर । अंकनि मृदंग निसान ।
नागर नट चितवहिं चकित । डिगहिं न ताल बिधान ॥
चौ० बने न बरनत बनी बराता । होइ सगुन सुंदर सुभ दाता
चारा चाखु बाम दिसि लेई । मनहुं सकल मंगल कहि देई
दाहिन काग सुखेन सुहावा । नकुल दरस सब काहुन पावा
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी । सघट सबाल आव बर नारी
लोवा फिरि फिरि दरस दिखावा । सुरभी सन्मुख सिसुहिं पिआवा
मृगमाला दाहिन दिसि आई । मंगल गन जनु दीन्ह दिखाई
छेम करी कहं छेम बिसेखी । स्यामा बाम सुतरु पर देखी
सन्मुख आयउ दधि अरु मीना । कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना
दो० मंगल मय कल्यान मय । अभिमत फल दातार ।
जनु सब सांचे होन हित । भये सगुन एक बार ॥
चौ० मंगल सगुन सुभग सब ताके । सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाके
राम सरिस बर दुलहिनि सीता । समधी दशरथ जनक पुनीता

सुनि अस व्याह सगुन सब नांचे । अब कीन्हें बिरंचि हम सांचे
इहि बिधि कीन्ह बरात पयाना । हय गज गाजहिं हनहिं निसाना
आवत जानि भानु कुल केतू । सरितन जनक बंधायेउ सेतू
बीच बीच बर बास बनाये । सुर पुर सरिस संपदा छाये
असन सयन बर बसन सुहाये । पावहिं सब निज निज मन भाये
नित नूतन सुख लखि अनुकूला । सकल बरातिन मंदिर भूला
दो० आवत जानि बराति बर । सुन गहगहे निशान ।
सजि गज रथ पद चर तुरग । लेन चले अगवान ॥
चौ० कनक कलस कल कोपर थारा । भोजन ललित अनेक प्रकारा
भरे सुधा सम सब पकवाना । भांति भांति नहिं जाहिं बखाना
फल अनेक बर वस्तु सुहाई । हरखि भेट हित भूप पठाई
भूषन बसन महा मनि नाना । खग मृग हय गज बहु बिधियाना
मंगल सगुन सुगंध सुहाये । बहुत भांति महिपाल पठाये
दधि चिउरा उपहार अपारा । भरि भरि कांवरि चले कहारा
अगवानन जब दीख बराता । उर आनंद पुलक भर गाता
देख बनाव सहित अगवाना । मुदित बरातिन हने निसाना
दो० हरखि परस्पर मिलन हित । कछुक चले बग मेल ।
जनु आनंद समुद्र दुइ । मिलत बिहाइ सुबेल ॥
चौ० वस्तु सकल राखी नृप आगे । बिनय कीन्ह तिन्ह अति अनुरागे
प्रेम समेत राउ सब लीन्हा । भे बकसीस याचकन दीन्हा
करि पूजा बहु मान बड़ाई । जनवासे कहं चले लिवाई
बसन बिचित्र पांवड़े परहीं । नृप दशरथ तापर पग धरहीं
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा । जहं सब कहं सब भांति सुपासा
जानी सिय बरात पुर आई । कछु निज महिमा प्रगट जनाई
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाईं । भूप पहुंनई करन पठाईं
दो० सिय आयसु सिर सिद्धि धरि । गईं जहां जनवास ।
लिये संपदा सकल सुख । सुर पुर भोग बिलास ॥
चौ० निज निज बास बिलोक बराती । सुर सुख सकल सुलभ सब भांती
बिभव भेद कछु काहु न जाना । सकल जनक कर करहिं बखाना
सिय महिमा रघुनायक जानी । हरखे हृदय हेतु पहिचानी

पितु आगमन सुनत द्वौ भाई। हृदय न अति आनन्द समाई
सकुचत कह न सकत गुरु पाहीं। पितु दरसन लालच मन माहीं
विश्वामित्र बिनय बड़ देखी। उपजा उर संतोष विशेखी
हरषि बंधु द्वौ हृदय लगाये। पुलक अंग लोचन जल छाये
चले जहां दसरथ जनुवासे। मनहुं सरोश्वर तके पियासे
दो० भूप बिलोके जबहि मुनि। आवत सुतन समेत।
उठेउ हरषि सुख सिंधु महं। चले थाहसी लेत॥
चौ० मुनिहिं दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पदरज धरि सीसा
कौसिक राउ लिये उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई
पुनि दंडवत करत द्वौ भाई। देखि नृपति उर सुख न समाई
सुत हिय लाय दुसह दुख मेटे। मृतक शरीर प्रान जनु भेटे
पुनि वसिष्ठ पद सिर तिन नाये। प्रेम मुदित मुनिबर उर लाये
विप्र वृन्द बन्दे दुहुं भाई। मन भावति असीस तिन्ह पाई
भरत महानुज कीन्ह प्रनामा। लिये उठाइ लाइ उर रामा
हरखे लखन देखि द्वौ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता
दो० पुरजन परिजन जाति जन। याचक मंत्री मीत।
मिले यथा बिधि सबहिं प्रभु। परम कृपाल बिनीत॥
चौ० रामहिं देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाइ बखानी
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धर्मादिक धनु धारी
सुतन्ह सहित दसरथ कहं देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेखी
सतानन्द अरु विप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुख बंदीजन
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु मांगि फिरे अगवाना
प्रथम बरात लगन तें आई। तातें पुर प्रमोद अधिकाई
ब्रह्मानन्द लोग सब लहहीं। बढ़उदिवसनिसबिधिसनकहहीं
दो० राम सीय शोभा अवधि। सुकृत अवधि द्वौ राज।
जहं तहं पुरजन कहहिं अस। मिल नर नारि समाज॥
चौ० जनक सुकृत मूरति बेदेही। दसरथ सुकृत राम धरि देही
इन सम काहु न शिव अवराधे। काहु न इन समान फल साधे
इन सम कोउ न भयउ जग माहीं। है नहिं कतहूं होनेहु माहीं
सम सब सकल सुकृत के रासी। भये जग जन्म जनकपुर बासी

जिन जानकी राम छबि देखी । को सुकृती हम सरिस बिसेखी
पुनि देखब रघुबीर बिबाहू । लेब भली बिधि लोचन लाहू
कहहिं परस्पर कोकिल बयनी । यह बिवाह बड़ लाहु सुनयनी
बड़े भाग बिधि बात बनाई । नयन अतिथि होइहैं द्वौ भाई
दो० बारहिं बार सनेह बस । जनक बुलाउब सीय ।
लेन आइहहिं बंधु दोउ । कोटि काम कमनीय ॥
चौ० बिबिधि भांति होइहि पहुनाई । प्रिय न काहि अस सासुर भाई
तब तब राम लखनहिं निहारी । होइहहिं सब पुर लोग सुखारी
सखि जस राम लखन कर जोटा । तैइसे भूप संग दुइ ढोटा
स्यामल गौर सब अंग सुहाये । ते सब कहहिं देखि जे आये
कहा एक मैं आजु निहारे । जनु बिरंचि निज हाथ संवारे
भरत राम एकहि अनुहारी । सहसा लखि न सकहि नर नारी
लखन सत्रुसूदन इक रूपा । नख सिख तें सब अंग अनूपा
मन भावहिं सुख बरनि न जाहीं । उपमा कह त्रिभुवन कोउ नाहीं
छं० उपमा न कोउ कह दासतुलसी कतहुं कबि कोबिद कहैं
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिन्धु इन सम ये लहैं
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं
ब्याहि सु चारिउ भाइ इहि पुर हम सुमंगल गावहीं
सो० कहहिं परस्पर नारि । बारि बिलोचन पुलक तनु ।
सखि सब करब पुरारि । पुन्य पयोनिधि भूप दोउ ॥
चौ० इहिबिधि सकल मनोरथ करहीं । आनंद उमगि उमगि उर भरहीं
जे नृप सीय स्वयम्बर आये । देखि बंधु तिन सब सुख पाये
कहत राम जस बिशद बिसाला । निज निज भवन गये महिपाला
गये बीत कछु दिन इहि भांती । प्रमुदित पुरजन सकल बराती
मंगल मूल लगन दिन आवा । हिम ऋतु अगहन मास सुहावा
ग्रह तिथि नखत योग बरिबारू । लगन सोधबिधि कीन्ह बिचारू
पठैदीन्ह नारद सन सोई । गुनी जनक के गनकन जोई
सुनी सकल लोगन यह बाता । कहहिं जोतषी अहहिं बिधाता
दो० धेनु धूल बेला बिमल । सकल सुमंगल मूल ।
बिप्रन कहेउ बिदेह सन । जानि समय अनुकूल ॥

चौ० उपरोहितहिं कहेउ नरनाहा । अब बिलंब कर कारन काहा
सतानन्द तब सचिव बुलाये । मंगल कलस साज सब ल्याये
संख निसान पनव बहु बाजे । मंगल कलस सगुन सब साजे
सुभग सुआसिन गावहिं गीता । करहिं वेद धुनि विप्र पुनीता
लेन चले सादर यह भांती । गये जहां जनवास बराती
कोसलपति कर देखि समाजू । अति लघु लगे तिनहिं सुरराजू
भयेउ समय अब धारिये पाऊ । यह सुनि परा निसानन घाऊ
गुरुहिं पूछि कर कुल बिधि राजा । चले संग मुनि साजि समाजा
साधु समाज संग महिदेवा । जनु तनु धरे करहिं सुख सेवा
सोहत साथ सुभग सुत चारी । जनु अपवर्ग सकल तनु धारी
मरकत कनक बरन बर जोरी । देखि सुरन्ह भइ प्रीति न थोरी
पुनि रामहिं बिलोकि हिय हरषे । नृपहिं सराहि सुमन तिन्ह बरषे
दो० राम रूप नख सिख सुभग । बारहिं बार निहार ।
पुलक गात लोचन सजल । उमा समेत पुरारि ॥
चौ० केकि कंठ दुति स्यामल अंगा । तड़ित विनिंदक बसन सुरंगा
व्याह विभूषन बिबिध बनाये । मंगल मय सब भांति सुहाये
सरद बिमल बिधुबदन सुहावन । नयन नवल राजीव लजावन
सकल अलौकिक सुन्दरताई । कहि न जाइ मनहीं मन भाई
बंधु मनोहर सोहहिं संगा । जात नचावत चपल तुरंगा
राजकुंवर बर बाजि नचावहिं । बंस प्रसंसक विरद सुनावहिं
जेहि तुरंग पर राम बिराजे । गति बिलोकि खगनायक लाजे
कहि न जाइ सब भांति सुहावा । बाजि भेख जनु काम नचावा
छं० जनु बाजि बेख बनाइ मनसिज राम हित अति सोहहीं ।
आपने वय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहहीं ।
जगमगत जीन जड़ाव जोति सुमोति मानिक तेहि लगे ।
किंकिनि ललाम लगाम ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे ॥
दो० प्रभु मनसहिं लय लीनि मन । चलत बाजि छबि पाव ।
भूषित उड़गन तड़ित घन । जनु बर बरहि नचाव ॥
चौ० जेहि बर बाजि राम असवारा । तेहि सारदहु न बरने पारा
छं० अति हर्ष राम समाज दुहुं दिस दुन्दुभी बाजहिं घनी ।

बरषहिं सुमन सब हरखि कह जय जयति जय रघुकुल मनी ।
यहि भांति जानि बराति आवत बाजने बहु बाजहीं ।
रानी सुआसिन बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं ॥
दो० सजि आरति अनेक बिधि । मंगल कलस संवारि ।
चलीं मुदित परछन करन । गजगामिन बर नारि ॥
चौ० बिधुबदनी मृगसावक लोचनि । बसनिज तनुछबि रतिमद मोचनि
पहरे बरन बरन कर चीरा । सकल विभूखन सजे शरीरा
सकल सुमंगल अंग बनाये । करहिं गान कलकंठ लजाये
कंकन किंकिन नूपुर बाजहिं । चाल बिलोकि काम गज लाजहिं
बाजहिं बाजन बिबिध प्रकारा । नभ अरु नगर सुमंगल चारा
छं० को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्म बर परिछन चलीं ।
कल गान मधुर निसान बरखहिं सुमन सुर सोभा भलीं ।
आनंदकंद बिलोकि दूलह सकल हिय हरखित भईं ।
अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छईं ॥
दो० जो सुखमा सिय मातु मन । देखि राम बर भेष ।
सो न सकहिं कहि कल्प सत । सहस सारदा सेष ॥
चौ० नयन नीर हटि मंगल जानी । परिछन करहिं मुदित मन रानी
वेद बिहित अरु कुल व्यवहारू । कीन्ह भली बिधि सब परिचारू
पंच शब्द धुनि मंगल गाना । पट पांवड़े परहिं बिधि नाना
करि आरति अर्घ तिन दीन्हा । राम गवन मंडप तब कीन्हा
दसरथ सहित समाज बिराजे । विभव बिलोकि लोकपति लाजे
नभ अरु नगर कोलाहल होई । आपन पर कछु सुने न कोई
इहि बिधि राम मंडपहिं आये । अर्घ देइ आसन बैठाये
दो० नाऊ बारी भाट नट । राम निछावरि पाइ ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर । हर्ख न हृदय समाइ ॥
चौ० मिले जनक दसरथ अति प्रीती । करि बैदिक लौकिक सब रीती
मिलत महा द्वौ राज बिराजे । उपमा खोजि खोजि कवि लाजे
लही न कतहुं हारि हिय मानी । इन सम ये उपमा उर आनी
जग बिरंचि उपजावा जब तें । देखे सुने व्याह बहु तब तें
सकल भांति सम साज समाजू । सम समधी देखे हम आजू

देत पांवड़े अर्घ सुहाये। सादर जनक मंडपहि ल्याये

छं० मंडप बिलोकि बिचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहं आनि सिंहासन धरे।
कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही।
कौसिकहिं पूजत परम प्रीति कि रीति तो न परै कही॥

दो० बामदेव आदिक ऋषय। पूजे मुदित महीस।
दिये दिव्य आसन सबहिं। सब सन लही असीस॥

चौ० बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाव न दूजा
कीन्ह जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज भाग्य बिभव बहुताई
पूजे भूपति सकल बराती। सम समधी सादर सब भांती
आसन उचित दिये सब काहू। कहों कहा मुख एक उछाहू
सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी

दो० रामचन्द्र मुख चन्द छबि। लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल। प्रेम प्रमोद न थोर॥

चौ० समय बिलोकि बसिष्ट बुलाये। सादर सतानन्द मुनि आये
बेगि कुंवर अब आनहुं जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई
रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन समेत सयानी
बिप्र बधू कुल बृद्ध बुलाई। करि कुल रीति सुमंगल गाई
सीय संवारि समाज बनाई। मुदित मंडपहिं चली लिवाई

छं० चलि ल्याइ सीतहिं सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी।
नव सप्त साजे सुन्दरी सब मत्त कुंजर गामिनी।
कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं॥

दो० सोहति बनिता बृन्द महं। सहज सुहावनि सीय।
छबि ललनागन मध्य जनु। सुखमा तिय कमनीय॥

चौ० सिय सुन्दरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई
आवत देखि बरातिन सीता। रूप रासि सब भांति पुनीता
सबहिं मनहिं मन कीन्ह प्रणामा। देखि राम भये पूरन कामा
हरखे दसरथ सुतन समेता। कह न जाइ उर आनंद जेता
गान निसान कुलाहल भारी। प्रेम प्रमोद नगर नर नारी

इहि बिधि सीय मंडपहिं आई । प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई
तेहि अवसर करि बिधि व्यवहारू । दुहु कुल गुरु सब कीन्ह अचारू

छं० आचारि करि गुरु गोरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं ।
सुर प्रगट पूजा लेहिं देहिं असीस सुनि सुख पावहीं ।
मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महं चहैं ।
भरे कनक कोपर कलस सब कर लिये परिचारक रहैं ।
कुल रीति प्रीति समेत रवि कहि देत सब सादर कियो ।
इहि भांति देव पुजाइ सीतहिं सुभग सिंहासन दियो ।
सिय राम अवलोकन परस्पर प्रेम काहु न लखि परै ।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै ॥

दो० होम समय तनु धरि अनल । अति हित आहुत लेहिं ।
बिप्र भेख धरि बेद सब । कहि बिवाह बिधि देहिं ॥

चौ० जनकपाट महिखी जग जाना । सीय मातु किमि जाइ बखाना
सुयश सुकृत सुख सुन्दरताई । सब समेट बिधि रचा बनाई
समय जानि मुनिबरन बुलाई । सुनत सुआसन सादर ल्याई
जनक बामदिसि सोह सुनयना । हिम गिरि संग बनी जनु मयना
कनक कलस मनि कोपर रूरे । सुचि सुगंध मंगल जल पूरे
निज कर मुदित राउ अरु रानी । धरे राम के आगे आनी
बर बिलोकि दंपति अनुरागे । पाय पुनीत पखारन लागे

छं० बर कुंवरि करतल जोरि साखोच्चार द्वौ कुल गुरु करैं ।
भयो पानिग्रहन बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनंद भरैं ।
सुख मूल दूलह देखि दंपति पुलक तनु हुलसे हिये ।
करि लोक बेद बिधान कन्यादान नृप भेखन दिये ।
हिमवंत जिमि गिरजा महेशहिं हरहिं स्री सागर दई ।
तिमि जनक रामहिं सिय समर्पी बिस्व कल कीरति नई ।
इक ठोर करि जोरी सुभग पुनि गोरि मूरति सांवरी ।
करि होम बिधिवत गांठि जोरी होन लागी भांवरी ॥

चौ० कुंवरि कुंवर कल भांवरि देहीं । नयन लाभ सब सादर लेहीं
जाइ न बरनि मनोहर जोरी । जो उपमा कछु कहिय सो थोरी
राम सीय सुन्दर परिछाहीं । जगमगाहिं मनि खंभन माहीं

मनहुं मदन रति धरि बहु रूपा । देखहिं राम बिवाह अनूपा
दरस लालसा सकुच न थोरी । प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी
भये मगन सब देखनिहारे । जनक समान अपान बिसारे
प्रमुदित मुनिन भांवरी फेरी । नेग सहित सब रीति निबेरी
राम सीय सिर सिन्दुर देहीं । शोभा कहि न जात बिधि केहीं
अरुन पराग जलज भरि नीके । ससिहि भूख अहि लोभ अमीके
बहुरि बसिष्ठ दीन्ह अनुशासन । बर दुलहिन बैठे इक आसन

छं० बैठे बरासन राम जानकि मुदित मन दसरथ भये ।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुर तरु फल नये ।
भरि भुवन रहा उछाह राम बिवाह भा सबही कहा ।
केहि भांति बरनि सिरात रसना एक मुख मंगल महा ॥

॥ इति ॥